

APRIL to JUNE 2008  
YEAR 5th : ISSUE IIInd



अप्रैल से जून 2008  
वर्ष पंचम : अंक द्वितीय

**GYAN PRABHA**  
(Quarterly)

**ज्ञान  
प्रभा**  
(त्रैमासिक) 9

---

सम्पादक मण्डल

---

सुरेश चन्द्र-प्रबन्ध सम्पादक  
डॉ० धर्मवीर सेठी-सम्पादक

---

*Editorial Board*

---

Suresh Chandra-Managing Editor  
Dr. Dharam Vir Sethi-Editor

---

मूल्य : 30/- रुपये

वार्षिक मूल्य 100/- रुपये

भारत विकास परिषद् प्रकाशन

## इस अंक में...

1. वैदिक वनय		4
2. हिन्दू धर्म के मूल तत्व	☐ सुरेश चंद्र	5
3. हिन्दू धर्म में ईश्वर की अवधारणा	☐ प्रभाकर माचवे	12
4. The Need to Re-vitalise Hinduism	☐ Jagmohan	19
5. The Vital Difference	☐ Arun Shourie	23
6. स्थितप्रज्ञता-गीता के संदर्भ में	☐ डॉ. धर्मवीर	26
7. आर्य संस्कृति का मंगल प्रतीक-स्वस्तिक	☐ प्रो. योगेश चन्द्र शर्मा	31
8. ओ३म्		35
9. भारत में भोर होगी तो मीरा के भजन से	☐ अब्दुल जब्बार	37
10. Ahimsa and Hinduism	☐ A.P.N. Pankaj	39
11. Self-Realisation	☐ Karan Singh	44
12. हिन्दुत्व एवं जैन धर्म	☐ डॉ. मधु पोद्दार	46
13. हिन्दू धर्म के पुनर्जागरण के पुरोधे	☐ आर. के. श्रीवास्तव	50
14. धर्म भारतीय परिप्रेक्ष्य में	☐ डॉ. हरीश कुमार शर्मा	54
15. The Hindu Concept of Time		56
16. भारतीय परम्परा में 'जल'	☐ जगत प्रकाश गर्ग	58
17. सोने के पिंजरे में भारतीय	☐ डॉ. अजित गुप्ता	62
18. Taj Mahal It is Time Time to Tell the Truth	☐ Dr. V.S. Godbole	69
19. कली-स्फुटन पश्चात् विस्फोट	☐ अंजु दुआ जैमिनी	73
20. नारी उत्थान के उद्घोषक डॉ. भीम राव अम्बेडकर	☐ डा. चम्पा श्रीवास्तव	77
21. प्रिय और अप्रिय का मनोविज्ञान	☐ राकेश शास्त्री राजा	81
22. 16 Qualities That Geniuses Have in common		85
23. पाठक नामा		87

## अ प नी बा त

ज्ञान प्रभा के त्रैमासिक प्रकाशन के उपरान्त उसका यह दूसरा पुष्प-गुच्छ सुधी-पाठकों को समर्पित करते हुए मन में उल्लास भर आता है क्योंकि विद्वानों ने इसे सराहा और हमें द्विगुणित उत्साह से कार्य करने की प्रेरणा दी।

ज्ञान प्रभा का प्रत्येक अंक, जैसा आप जानते हैं, किसी न किसी विशेष बिन्दू पर आधृत रहा है। इस बार वह बिन्दू है 'हिन्दू धर्म'। इस वैदिक धर्म की चर्चा हो तो 'ओ३म्' और 'स्वास्तिक' का वर्णन न हो, यह कैसे हो सकता है आचार्य विनोबाभावे और वीर सावरकर की हिन्दू धर्म के सम्बन्ध में क्या धारणा थी, श्री जागमोहन Hinduism को पुनर्जीवित कैसे करना चाहते थे, अहिंसा और हिन्दुत्व का परस्पर क्या सम्बन्ध है, Arun Shourie द्वारा अन्य धर्मों के साथ इसकी तुलना, प्रभाकर माचवे की 'हिन्दू धर्म में ईश्वर की अवधारणा, हिन्दू धर्म के मूल तत्व पर विद्वान् लेखकों ने अपने विचार व्यक्त किया हैं। Hindu Concept of Time की भी अपनी विशेषता है। डॉ. कर्ण सिंह का Self Realisation, भारतीय परिप्रेक्ष्य में धर्म की व्याख्या, जैन धर्म से इसकी तुलना और हिन्दू पुनर्जागरण के पुरोधे आदि विषयों पर भी आपको अच्छी सामग्री पढ़ने को मिलेगी।

इन सब के अतिरिक्त 'जल' का भी हमारी संस्कृति में महत्व है, भ्रूण-हत्या से सम्बन्धित 'कली स्फुटन, पश्चात् विस्फोट,' ताज महल का सत्य, सोने के पिंजरे में भारतीय, डा. भीमराव अम्बेडकर पर भी पर्याप्त पाठ्य-सामग्री संजोई गई है! 'भारत में भोर होगी तो मीरा के भजन से' गीत पढ़कर तो आनन्द से आप सराबोर हो जाएँगे। 'पाठक नामा' भी इसमें जोड़ दिया गया है।

सम्पादक मण्डल का यह समग्र प्रयास आपको कैसा लगा, अपनी प्रतिक्रिया और सुझाव अवश्य लिखे भेजें। भविष्य में वे हमारा पथ-प्रदर्शन करेंगे।

- सम्पादक



## वैदिक विनय

ओ३म् अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्न धातमम्।  
(ऋग्वेद:1-1-1)

मैं ज्ञानस्वरूप, पूर्व से ही जगत् को धारण करने वाले, यज्ञ के प्रकाशक, सदैव पूजनीय, सब अभीष्ट पदार्थों के दाता, सब सुन्दर पदार्थों के स्वामी प्रभु की स्तुति करता हूँ।

I laud the Ever-worshipful, All-knowing Lord of the Universe, who existed before its creation, Who is Bestower of all cherished desires and Master of all precious materials.

ओ३म् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम॥

(यजुर्वेद: 40-16)

हे नायक! धनहेतु, सुपथ से हमें चलाओ।

कटुता संकट कुटिल, पाप से सदा बचाओ॥

हे प्रकाशमय देव! सकल आचरण हमारे।

जो कुछ भी गुण कर्म विदित वे तुम पर सारे॥

हम बहु प्रकार से आपकी, भक्ति हृत्पटल पै धरें।

अति प्रेम पूर्ण प्रभु अन्त में, पुनः 'नमस्ते' हम करें॥

Oh, Self-effulgent, Omniscient Lord, cast out from us all debasing and sinful desires and habits and lead us, by the path of righteousness, to the attainment of all true knowledge and worldly riches. For this we offer unto thee profound obeisance and praise.



## हिन्दू धर्म के मूल तत्व

● सुरेश चंद्र

हिन्दू धर्म के संदर्भ में धर्म शब्द की एक विशिष्ट व्याख्या है। जब से मानव ने पृथ्वी पर जन्म लिया एवं उसे एक व्यवस्थित एवं सुन्दर जीवन की आवश्यकता अनुभव हुई तो उसने मानव मात्र के जीवन के लिये कल्याणकारी कुछ नियम या आचार संहिता का निर्माण किया एवं यही नियम धर्म अथवा मानव धर्म के नाम से जाने गये। संस्कृत में धर्म की व्याख्या 'धारणात् आहू धर्म इति' अर्थात् धर्म वह है जो सबको धारण करता है।

किन्तु धर्म शब्द का एक और अर्थ में भी प्रयोग किया जाता है जिसे अंग्रेजी में रिलीजन कहते हैं। इस संदर्भ में धर्म का अर्थ मत, पंथ या मज़हब होता है। मानव धर्म सार्वभौम है जब कि रिलीजन अलग-अलग होते हैं। इस्लाम, यहूदी, ईसाई इत्यादि इसी प्रकार के धर्म हैं। इस प्रकार के धर्मों की क्यों आवश्यकता हुई एवं उनका जन्म एवं विकास किस प्रकार हुआ इसके संबंध में विद्वानों द्वारा अलग-अलग मत एवं सिद्धांत स्थिर किये गये हैं। इन्हें पूर्व-मानव शास्त्रीय सिद्धांत, मानव शास्त्रीय सिद्धांत, मनोवैज्ञानिक सिद्धांत एवं ऐतिहासिक सिद्धांत के नाम से जाना जाता है। इन सबका विवेचन न तो इस लेख की विषय वस्तु है एवं न ही इसके सीमित कलेवर में ऐसा करना संभव है।

प्रत्येक धर्म तीन आधारों पर टिका होता है: उसका कर्म कांड, दर्शन एवं आस्था। इस्लाम को ही लें, इसके अनुयायियों के लिये पाँच कर्म कांड या कर्त्तव्य अनिवार्य हैं: कलिमा पढ़ना, नमाज पढ़ना, रोज़ा रखना, जकात देना एवं हज करना। प्रत्येक मुसलमान का विश्वास है कि अल्लाह एक है, वह सर्वशक्तिमान है एवं निराकार है। उसके एक मात्र संदेश वाहक या पैगम्बर हज़रत मुहम्मद हैं। इस्लाम की आधार शिला कुरान मजीद, हदीस, इज्माअ एवं

कियास नाम के चार स्तम्भों पर टिकी हुई है एवं ये ही चारों शरीरगत एवं विधि शास्त्र के स्रोत हैं।

इसी प्रकार ईसाई धर्म में भी ईश्वर को निराकार माना जाता है एवं ईसा मसीह उनके पुत्र कहे जाते हैं। ईसा मसीह ने अपना बलिदान इसलिये दिया था कि समस्त मानवता पाप से मुक्ति पा सके। ईसाइयों को इस बात पर ईमान लाना आवश्यक है कि ईसा परमेश्वर के इकलौते पुत्र थे, वे क्रॉस पर चढ़ने के तीसरे दिन जीवित हो उठे थे एवं इस प्रकार उनका पुनरुत्थान हुआ था। ईसाई मत में परमेश्वर, उसका पुत्र एवं पवित्रात्मा तीनों एक ही परमेश्वर के तीन रूप हैं एवं वस्तुतः तीनों एक ही हैं। इस प्रकार ईसा भी परमेश्वर है। बाइबिल उनकी पवित्र पुस्तक है। बाइबिल का पाठ करना एवं रविवार को चर्च जाना एक ईसाई के अत्यावश्यक कर्तव्य माने गये हैं।

हिन्दू धर्म उस अर्थ में कोई धर्म नहीं है जिसका बोध इस्लाम या ईसाई धर्म से होता है। कुरान या बाइबिल की भांति इसकी कोई एक पुस्तक नहीं है एवं न ही हज़रत मुहम्मद अथवा ईसा मसीह की भांति कोई पैगम्बर है। राम एवं कृष्ण के अवतार यद्यपि सर्वमान्य हैं किन्तु उन्हें कोई न भी माने तब भी वह हिन्दू है। यह वास्तव में एक गहरी एवं विस्तृत विचारधारा है जिसमें भांति-भांति की नैतिक एवं धार्मिक विचारधाराएँ आकर मिल गई हैं। ये ही नहीं इस विचारधारा से अनेक मत एवं संप्रदाय निःसृत हुए हैं एवं उनके अनुयायी भी हिन्दू ही कहलाते हैं।

किन्तु फिर भी कुछ कर्म कांड, दार्शनिक विचार धाराएँ, आस्थाएँ एवं पुस्तकें ऐसी हैं जिनका अधिकांश हिन्दू किसी न किसी रूप में पालन करते हैं, उनमें विश्वास करते हैं एवं उनका अध्ययन करते हैं। इनको संक्षेप में निम्न प्रकार से वर्णित किया जा सकता है:-

**1-16 संस्कार**-ये सोलह कर्मकांड हैं जो गर्भाधान से प्रारम्भ होकर मृत्यु पर्यंत चलते रहते हैं। इनके नाम हैं; गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, वेदारम्भ, संवर्तन, विवाह, वानप्रस्थ, सन्यास एवं अन्त्येष्टि।

ऐसी मान्यता है कि संस्कार मानव जीवन को शैशव काल से वृद्धावस्था तक शुद्ध करते हैं एवं उसे स्वस्थ, प्रसन्न एवं समाज का एक योग्य घटक बनाते हैं। शिशु अपने पूर्व जन्म से एवं माता पिता से भी कुछ गुण लेकर

उत्पन्न होता है। ये सोलह संस्कार उन गुणों में और वृद्धि हो ऐसे वातावरण का निर्माण करते हैं। कच्ची मिट्टी से बनी मूर्ति के समान जन्म लेने वाला शिशु इन संस्कारों से सर्व गुण संपन्न पूर्ण मानव बनने के मार्ग पर अग्रसर होता है।

**2 वर्णाश्रम व्यवस्था**-मनुष्य अपने स्वभावगत गुणों के अनुसार समाज में अपना स्थान बना सके एवं इससे उसका व्यक्तिगत एवं समाज का भी विकास हो सके इसके लिये ही हिन्दू मनीषियों ने चार वर्णों; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र की व्यवस्था की थी। ये वर्ण व्यक्ति के गुणों एवं कर्मों के आधार पर बनाये गये थे किन्तु कालान्तर में यह व्यवस्था विकृत हो गई एवं समाज जातियों में बंट गया। व्यक्ति की जाति कर्म एवं गुणों के आधार पर नहीं उसके जन्म के आधार पर निश्चित की जाने लगी।

जिस प्रकार समुचित विकास के लिये समाज को चार वर्णों में बांटा गया उसी प्रकार मनुष्य जीवन के पूर्ण विकास को दृष्टि में रखते हुए उसके जीवन को भी चार भागों में विभक्त किया गया। इन्हें आश्रम का नाम दिया गया एवं इनका नाम ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम रखा गया। मनुष्य की आयु 100 वर्ष मानते हुए प्रत्येक आश्रम की अवधि 25 वर्ष रखी गई। ब्रह्मचर्याश्रम में विद्याध्ययन, गृहस्थाश्रम में विवाह करके संतानोत्पत्ति एवं जीविकोपार्जन, वानप्रस्थाश्रम में निजी स्वार्थ त्याग करके मानव सेवा एवं संन्यासाश्रम में समस्त सांसारिक वस्तुओं से विरक्ति का प्रावधान किया गया।

**3 चार पुरुषार्थ**-हिन्दू धर्म की ऐसी मान्यता है कि मानव की आत्मा ईश्वर के ही समान है किन्तु केवल उसमें परमानन्द की कमी है। इस आनन्द की खोज में ही आत्मा सदैव लगी रहती है एवं इसकी प्राप्ति को ही मोक्ष की संज्ञा दी गई है। मनुष्य के जीवन का लक्ष्य ही मोक्ष की प्राप्ति है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये चार पुरुषार्थ निश्चित किये गये हैं जिनको धर्म, अर्थ, काम का नाम दिया गया है एवं अंतिम पुरुषार्थ स्वयं मोक्ष है। धर्म का अर्थ यहाँ किसी मजहब विशेष से नहीं है किन्तु दया, क्षमा, इन्द्रिय निग्रह अस्तेय, धैर्य, अक्रोध, मन पर नियंत्रण इत्यादि से है। अर्थ से तात्पर्य उस भौतिक संपदा की प्राप्ति से है जो एक सम्मान एवं विश्वास से पूर्ण जीवन जीने के लिये आवश्यक है। काम का अर्थ अपने मन एवं शरीर की कामनाओं की पूर्ति से है। मनुष्य धन इसीलिये अर्जित करता है कि उसकी सांसारिक आकांक्षाओं की पूर्ति हो सके। किन्तु यह सब धर्म के मार्ग पर चलते हुए होना चाहिये।

**4 वेदों तथा पवित्र ग्रन्थों में विश्वास**—हिन्दुओं के लिये वेद ईश्वरीय वाणी है। वेद का अर्थ ही ज्ञान, विशुद्ध ज्ञान एवं मौलिक ज्ञान है। वेदों का ज्ञान केवल हिन्दुओं की ही बपौती नहीं है। यह उसी प्रकार समस्त मानवता के लिये ज्ञान है जैसे सापेक्षता का सिद्धांत एवं न्यूटन का पृथ्वी के आकर्षण का सिद्धांत था। यह ज्ञान सदैव से विश्व में था। वेदों एवं इन वैज्ञानिकों ने केवल इसे प्रकाश में लाने का कार्य किया है। अतः ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम वेद एवं अथर्व वेद के द्वारा दिया गया ज्ञान शाश्वत ज्ञान है।

वेदों के अतिरिक्त 13 उपनिषद्, 6 वेदांग 4 ब्राह्मण ग्रंथ, स्मृतियों एवं पुराणों का भी हिन्दू धर्म में अत्यधिक महत्व है। इन ग्रंथों में हिन्दू धर्म का समस्त दर्शन, कर्म कांड एवं विवेचना मिलती है। चारों पुरुषार्थों का वर्णन मनु स्मृति में ही किया गया है। इस शृंखला में यदि रामायण, महाभारत एवं श्री मद्भगवत गीता का उल्लेख नहीं किया जायेगा तो ग्रंथों की यह सूची अधूरी रहेगी। गीता को तो पंचम वेद कहा जाता है।

**5 षड् दर्शन**—जब संसार के अन्य देश जीविका एवं रहने के सुरक्षित स्थान के लिये संघर्ष कर रहे थे तब भारतीय मनीषा अपने शीर्ष स्थान पर पहुँच चुकी थी। उसी समय हमारे ऋषियों ने विश्व को षड् दर्शन का उपहार दिया। ये दर्शन सुकरात एवं प्लेटो के दर्शन से भी उच्च स्थान रखते हैं। ये दर्शन हैं:-

महर्षि कपिल का सांख्य

महर्षि पातंजलि का योग

महर्षि कणाद का वैशेषिक

महर्षि गौतम का न्याय

महर्षि जैमिनी की पूर्व मीमांसा

महर्षि वेदव्यास की उत्तर मीमांसा

हिन्दुओं के लिये ये षड् दर्शन संसार के समस्त ज्ञान का सार हैं। उत्तर मीमांसा को वेदांत अर्थात् परम ज्ञान की कहा जाता है। इन दार्शनिक विचार धाराओं की विशेषता यह है कि पृथक पृथक होते हुए भी इनमें कहीं भी विरोध नहीं है अपितु ये एक दूसरे की पूरक हैं। इन सबका अंतिम लक्ष्य मनुष्य को मोक्ष तक पहुँचाना है।

**6 पुनर्जन्म में विश्वास**—प्रायः ऐसा सुनने में आता है कि किसी व्यक्ति के यहाँ किसी शिशु का जन्म हुआ एवं कुछ बड़ा होने पर वह कहने लगा कि उसके माता पिता अमुक नगर में रहते हैं, उसके इतने भाई बहन हैं एवं उसकी मृत्यु अमुक कारण से हुई थी। उसके वर्तमान माता पिता द्वारा उसे उस स्थान पर ले जाने एवं बालक द्वारा बतलाई गई घटना का सत्यापन करने पर ये तथ्य सत्य सिद्ध होते हैं। यद्यपि कुछ समय के पश्चात् वह बालक इन घटनाओं को भूल जाता है। इन घटनाओं पर शोध करने के लिये एक समय में जयपुर विश्वविद्यालय में परामनोविज्ञान के नाम से एक अलग विभाग भी बनाया गया था जिसे कुछ समय बाद समाप्त कर दिया गया।

हिन्दू विश्वास के अनुसार यह शरीर पंच तत्व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश से निर्मित हैं किन्तु ये पंच महाभूत तब तक निर्जीव रहते हैं जब तक इसमें आत्मा का प्रवेश नहीं होता। जीव अनेक योनियों से गुजरता हुआ मनुष्य योनि को प्राप्त करता है। यह जीवों में सर्वश्रेष्ठ योनि है। श्रेष्ठ कर्मों के आधार पर ही वह मोक्ष को प्राप्त होता है एवं जन्म मरण के बंधन से छूट जाता है।

**7 कर्मफल सिद्धांत**—‘जैसा बोयेंगे वैसा ही काटेंगे’ हिन्दू धर्म के अनुयायियों का इस सिद्धांत में दृढ़ विश्वास है। कर्मफल सिद्धांत में दो मुख्य बातें हैं: किये हुए कर्म का नाश नहीं होता एवं बिना किये हुए किसी कर्म का फल नहीं मिलता—कृतप्रणाश एवं अकृताम्युपराम। कर्म तीन प्रकार के होते हैं: संचित, प्रारब्ध एवं क्रियमाण तथा इसी कर्मफल सिद्धांत के द्वारा हिन्दू विचारधारा भूत, वर्तमान एवं भविष्य को एक ही कड़ी बनाती है। वास्तव में हमारा वर्तमान जीवन पूर्वकृत कर्मों का ही परिणाम है एवं भविष्य का जीवन वर्तमान में किये कर्मों का परिणाम होगा। इस प्रकार मनुष्य अपनी नियति का स्वयं ही नियंता है।

**8 अहिंसा**—जैन मुनि सुशील कुमार जी ने कहा था कि ‘हिन्दू’ शब्द का प्रथम अक्षर ‘हि’ का अर्थ है ‘हिंसा’ ‘एवं’ ‘दू’ का अर्थ दूर है अर्थात् वह व्यक्ति जो हिंसा से दूर रहे। एक संस्कृत विद्वान ने भी हिन्दू का यही अर्थ किया है—‘हिंसा दूयते इति हिन्दू’ अर्थात् जो हिंसा से दुःखी होता है वह हिन्दू है। वेदों का आदर्श वाक्य ‘हिंसयाद् सर्वभूतानि’ अर्थात् किसी के प्रति भी हिंसा न करो। मनु स्मृति में वनस्पतियों के लिये भी कहा गया है कि जो

व्यक्ति वनस्पतियों को जिस प्रकार के कष्ट दे, राजा उसकी हिंसा का दंड उसे उसी प्रकार से दे। गीता पर अपनी व्याख्या में श्री रामानुजाचार्य ने अहिंसा की परिभाषा करते हुए कहा कि मनसा, वाचा एवं कर्मणा ऐसा कुछ भी न करना जिससे किसी प्राणी को कष्ट पहुंचे, उसे ही अहिंसा कहते हैं।

जैन एवं बौद्ध धर्म, जो कि हिन्दू धर्म से पर्याप्त साम्य रखते हैं, में अहिंसा को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। जैन मतावलम्बी जीव मात्र को आत्मवत् मानते हैं एवं छोटे से छोटे कीट को भी कष्ट पहुंचाना पाप समझते हैं।

**9 मूल मंत्र ओंकार-** हिन्दू धर्म में सनातनी लोग प्रत्येक मंत्र के साथ ओंकार का प्रयोग अवश्य करते हैं। वेदों में ओम को परमेश्वर माना गया है। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास की प्रारम्भिक पंक्तियों में एक वेद मंत्र का अर्थ निम्न प्रकार बतलाया है:-

यह ओम शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है क्यों कि इसमें अ, उ और म तीन अक्षर मिलकर एक-ओम-समुदाय हुआ है। इस नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं, जैसे-अकार से विराट, अग्नि और विश्व आदि। उकार से हिरण्यगर्भ, वायु, तेजस आदि। मकार से ईश्वर, आदित्य, प्राज्ञ आदि नामों का वाचक और ग्राहक है। उसका ऐसा ही वेदादि सत्य शास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान किया है कि प्रकरणानुकूल ये सब नाम परमेश्वर के ही हैं।

बौद्धों का प्रधान मंत्र 'ओं मणि पद्मे हुम' है।

जैन धर्म के बहुत से मंत्रों में 'ओं' का प्रयोग हुआ है।

सिक्खों के धार्मिक ग्रंथ गुरु ग्रंथ साहब में सर्व प्रथम 'एक ओं सद्गुरु प्रसाद' यही मंगलाचरण मिलता है।

**10 गौ रक्षा-गऊ** को भारतवर्ष में सदैव पवित्र माना गया है। प्राचीन काल में इस कृषि प्रधान देश में गौ न केवल देश के आर्थिक ढांचे की आधार थी अपितु पूजनीय भी थी। गौ रक्षा प्रत्येक हिन्दू का परम कर्तव्य था एवं यह भावना आज भी कायम है। केवल हिन्दू ही नहीं बौद्ध, जैन एवं सिक्ख भी अपने को गोरक्षक मानते हैं। बौद्धों के धम्म पद में लिखा है-'गावो ना परम मित्ता गावों ना परम धनं' अर्थात् गाय परम मित्र एवं परम धन है। कहा जाता है जैन संत नरहरि के समझाने पर ही अकबर ने अपने राज्य में गो वध

बन्दी का फरमान जारी किया था। गुरु गोविन्द सिंह जी ने अपने 'दशम ग्रंथ विचित्र नाटक' में लिखा है:-

'यही देहि आज्ञा तुरक के मिटाउं। गड घात का पाप जग से हटाउं'

हिन्दू धर्म का मूल भूत सिद्धांत तो नहीं किन्तु एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि इसके अनुयायी अनेक प्रकार से एवं अनेक रूपों में ईश्वर की उपासना करने के लिये स्वतंत्र हैं एवं करते हैं। यहां तक की ईश्वर को न मानने वाले नास्तिक भी इसमें सम्मिलित हैं। इन सबकी अलग-अलग उपासना पद्धतियां एवं दार्शनिक विचारधाराएँ हैं। इसका कारण यह है कि हिन्दू मनीषियों की यह मान्यता थी कि प्रत्येक व्यक्ति का बौद्धिक स्तर समान नहीं होता। ईश्वर एक है एवं निराकार है किन्तु निराकार पर ध्यान केन्द्रित करना एवं उसकी उपासना करना दुरूह कार्य है। अतः प्रत्येक व्यक्ति अपनी रुचि एवं बौद्धिक क्षमता के अनुसार उस तक पहुंचने का प्रयास कर सकता है।

हिन्दू विचार पद्धति ही इस प्रकार बनाई गई है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता एवं आवश्यकता के अनुसार एक विशिष्ट मार्ग अपनाकर सर्वांगीण भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति कर सके।

**-लेखक भारत विकास परिषद् प्रकाशन के चेयरमैन हैं।**

## हिन्दू शब्द की उत्पत्ति

इस बिन्दु पर समस्त इतिहासकार एक मत हैं कि हिन्दू शब्द की उत्पत्ति सिन्धु से ही हुई है। वर्तमान सिन्धु नदी को ही संस्कृत भाषा में सिन्धु कहते हैं। ईरानी भाषा में 'स' अक्षर का उच्चारण नहीं कर पाते अतः वे सप्ताह को हफ्ता, मास को माह एवं केसरी को केहरी कहते हैं। उनके प्राचीन शिला लेखों में हिन्दू शब्द का उल्लेख पाया जाता है।

ईरानी लोग आर्यों को ही अपना पूर्वज मानते थे एवं सूर्य तथा अग्निदेव की पूजा किया करते थे। ईरान के बादशाह अपने नाम के साथ आर्य मेहर की उपाधि का प्रयोग किया करते थे। इस प्रकार हिन्दुओं के द्वारा माना जाने वाला धर्म हिन्दू धर्म कहलाया जिसे सनातन धर्म या वैदिक धर्म भी कहते हैं।

**-स्व. ब्रह्म स्वरूप कुलश्रेष्ठ के लेख का एक अंश**

# हिन्दू धर्म में ईश्वर की अवधारणा

## ● प्रभाकर माचवे

हिन्दू-धर्म का पाँच हजार वर्षों का इतिहास है। भारत में एक महान् धर्म के रूप में इसका विकास हुआ। इसे सनातन धर्म भी कहा जाता है। इस धर्म का विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन किया गया और इससे एक ऐसी गतिशील आध्यात्मिक परंपरा का निर्माण हुआ, जो संपूर्ण मानव-जाति के करीब सातवें भाग का प्रेरणा-स्रोत है। धर्म के क्षेत्र में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

हिन्दुओं ने वेद को अपने धर्म का उद्गम माना है। उनका कहना है कि वेद मनुष्य का प्राचीनतम साहित्य है। यह अनंत ज्ञान का भंडार है। वेद का संबंध किसी पुस्तक से नहीं हो सकता; क्योंकि इसका संबंध जीवन के मूल सत्यों से है। मनुष्य की प्रकृति क्या है? इस जगत् की प्रकृति क्या है? मनुष्य का लक्ष्य क्या है? इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है? मनुष्यों के बीच क्या संबंध है? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जो सत्ता का रहस्य है और वेद के रचयिताओं ने अपनी आंतरिक शुद्धता और विवेक से उस रहस्य का पता लगाया। स्वामी विवेकानन्द ने सन् 1893 ई. में शिकागो की धर्म-संसद में अपने ऐतिहासिक भाषण में कहा:

‘वेद का अर्थ किसी पुस्तक से नहीं है। इसका अर्थ आध्यात्मिक नियमों के उस भंडार से है, जिसे विभिन्न व्यक्तियों ने विभिन्न कालों में संचित किया। जिस प्रकार गुरुत्वाकर्षण नियम खोज के पहले भी अस्तित्व में था और इसे सारी मानवता भूल भी जाए, तो भी इसका अस्तित्व रहेगा, उसी प्रकार आध्यात्मिक जगत् को नियंत्रित करनेवाले नियम भी शाश्वत हैं। एक आत्मा का दूसरी आत्मा के साथ, तथा जीवात्माओं और परमात्मा के बीच आध्यात्मिक

संबंध इनकी खोज के पहले भी अस्तित्व में थे और अगर हम इन संबंधों को भूल भी जाएँ, तो भी ये हमेशा रहेंगे’

‘इन नियमों की खोज करनेवाले ऋषि कहलाते थे, पूर्ण प्राणी के रूप में हम उनका सम्मान करते हैं। मुझे अपने सुननेवालों से यह कहते हुए खुशी हो रही है कि उन ऋषियों में कुछ महान् महिलाएँ भी थीं।’

मनुष्य अपने लिए अत्यधिक सत्यों की खोज कर सकता है। इस प्रकार, का प्रयास अथवा तथा हिन्दू-धर्म का केवल यह नहीं के किसी पुरुष में है—चाहे वह अवतार ही क्यों न आधार नहीं है, है। आध्यात्मिक सत्य महान् ऋषियों ने हमें हम उनका अनुसरण आध्यात्मिक क्षमता

हिन्दू धर्म केवल यह नहीं कहता कि प्राचीन काल के किसी पुरुष में आस्था रखना ही धर्म है—चाहे वह दिव्यता-प्राप्त ईश्वर का अवतार ही क्यों न हो। आस्था धर्म का आधार नहीं है, अनुभूति इसका आधार है। आध्यात्मिक सत्य अनुभूति

खोज धर्म का मूल है आधार है। हिन्दू धर्म कहता कि प्राचीन काल आस्था रखना ही धर्म दिव्यता-प्राप्त ईश्वर का हो। आस्था धर्म का अनुभूति इसका आधार अनुभूति में छिपे हैं। एक मार्ग दिखाया है। कर सकते हैं और अपनी के बल पर, सत्य की कसौटी पर हम उसकी जाँच कर सकते हैं। यह मार्ग सबके लिए खुला है। कोई भी आध्यात्मिक मार्ग का अनुसरण करके पूर्णता को प्राप्त कर सकता है। हिन्दू-धर्म के अनुसार मनुष्य मूलतः दिव्य है, अतः दिव्यता प्राप्त करने की संभावना है। न तो केवल आस्था रखना धर्म है, न केवल विद्वत्ता प्राप्त करना।

स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो की धर्म-संसद में कहा था:

‘यह हिन्दू धर्म का केंद्र, मुख्य अवधारणा है। हिन्दू शब्दों और सिद्धांतों पर जीना नहीं चाहते। यदि इस साधारण जीवन से परे कोई सत्ता है, तो वह उसके आमने सामने आना चाहता है। अगर उसमें आत्मा है, जो जड़ पदार्थ नहीं है, अगर कोई कृपालु विश्वात्मा है, तो वह सीधे उसके पास जाएगा। वह उसका दर्शन करेगा और तभी उसके मन से सभी संशय दूर होंगे। अतः, हिन्दू ऋषि आत्मा के संबंध में जो सबसे अच्छा प्रमाण देता है, वह इस प्रकार है—‘मैंने आत्मा का दर्शन किया है; मैंने ईश्वर का दर्शन किया है। और, पूर्णता की यही शर्त है। हिन्दू-धर्म किसी सिद्धांत में आस्था रखने

का प्रयास या संघर्ष नहीं है, बल्कि एक अनुभूति है, दर्शन है और दिव्य होना है'।

इस प्रकार, हिन्दू-धर्म का लक्ष्य सतत प्रयास से दिव्यता प्राप्त करना है पूर्ण होना है, और ईश्वर-दर्शन करना है।

हम अपनी पाँच ज्ञानेन्द्रियों से जगत् का अनुभव करते हैं, लेकिन जिस जगत् का हम अनुभव करते हैं, वह जाँच करने पर परिवर्तनशील निकला है। तो क्या कोई ऐसी चीज़ है, जो अपरिवर्तनशील है? साधारणतया धर्म एक ऐसे ईश्वर में विश्वास करता है, जो अमर है, परम है और मुक्त सत्ता है। नश्वर मनुष्य को इसके ध्यान में शान्ति मिलती है। लेकिन, प्रश्न यह उठता है कि हम एक परम सत्ता में क्यों विश्वास करते हैं? हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों से इस जगत् की, जो भी चीज़ अनुभव करते हैं, उसे नश्वर पाते हैं। इसलिए, ईश्वर का प्रश्न कहाँ उठता है? धर्म के इतिहास से इस बात का पता चलता है कि मनुष्य ने पहले ईश्वर की खोज बाह्य जगत् में की। उसने एक ऐसे ईश्वर की कल्पना की, जो स्वर्ग में रहता है। बाद में दर्शन का विकास हुआ और जाँच करने पर यह पता चला कि बाह्य जगत् की हर वस्तु क्षणभंगुर और परिवर्तनशील है। हिन्दू-धर्म के वेदांत दर्शन का यह एक सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष है। हमारा शरीर नश्वर है। हमारा मन नश्वर है। लेकिन, भारत के ऋषियों ने इस निष्कर्ष को ही अंतिम नहीं समझा। उन्होंने इसे अंतिम सत्य माना। उन्होंने मनुष्य का गहराई से अध्ययन किया। उन्होंने अनुभव किया कि बाह्य जगत् में प्रकृति अपने गूढ़तम रहस्यों को उद्घाटित नहीं करती, बल्कि मनुष्य के आभ्यंतरिक जगत् में करती है। मनुष्य का आभ्यंतरिक जगत् विकास की एक महत्वपूर्ण रचना है। अतः उन्होंने बाह्य जगत् की प्रकृति अथवा मनुष्य की नियति के संबंध में कोई अंतिम रूप से उत्तर देने के पहले यह आवश्यक समझा कि मनुष्य के आभ्यंतरिक जगत् के गूढ़ रहस्यों का पता लगाया जाये। अगर इस जगत् में कोई ऐसी सत्ता नहीं है, जो अमर अथवा अपरिवर्तनशील है, तो किसी ईश्वर या परम सत्ता में आस्था रखना बेबुनियाद है और मनुष्य का यह कहना उचित है कि सब कुछ क्षणभंगुर और परिवर्तनशील है। हजारों वर्ष पहले भारतवर्ष के लिए यह एक चुनौती थी। उपनिषदों ने यह चुनौती स्वीकार की और मनुष्य के आभ्यंतरिक जगत् के गूढ़ रहस्यों का पता लगाया। उनका एक मात्र लक्ष्य, सत्य की खोज करके मानव का कल्याण करना था।

उपनिषदों तथा वेदांत से हिन्दू-धर्म का मिलना वरदान है और यह भी वरदान है कि विश्व के महान् धर्म आज भी इन्हीं शाश्वत स्रोतों से मार्ग-दर्शन लेते हैं। हिन्दू-धर्म के अनुसार, मनुष्य का आध्यात्मिक विकास होना जरूरी है। सामाजिक मूल्य आत्मिक विकास की देन हैं। आभ्यंतरिक अनुशासन से ही दिव्यता प्राप्त करना संभव है। भारत के प्राचीन ऋषियों ने उस दिव्यता की अनुभूति प्राप्त की। वह दिव्यता ही आत्मा है, जिसे ब्रह्म भी कहा गया। उन्होंने बहुत सुन्दर ढंग से इस सत्य का उद्घाटन किया: 'एकम् एवं अद्वितीयं ब्रह्म।' एकमात्र अद्वितीय ब्रह्म ही था।

हिन्दू धर्म चिंतनशील दर्शन की परम सत्ता तथा एकेश्वरवादात्मक धर्म के ईश्वर से संतुष्ट नहीं रहता। क्या ईश्वर या परम सत्ता की अनुभूति हो सकती है? उपनिषद् के रचयिताओं ने अपनी अनुभूति के आधार पर तथा नैतिक शुद्धता के अनुशासन और बौद्धिक अनासक्ति से इस प्रश्न का उत्तर पाने की कोशिश की। बृहदारण्यकोपनिषद् में याज्ञवल्क से एक छात्र ने कहा 'गुरुदेव' जो साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म और सर्वांतर आत्मा है, उसकी व्याख्या करें।' याज्ञवल्क ने उत्तर दिया- 'यह तेरी आत्मा ही सर्वांतर है'।

प्रथम उपनिषद्, अर्थात् ईशावास्योपनिषद् के प्रथम श्लोक में संपूर्ण अस्तित्व के आध्यात्मिक एकत्व की घोषणा को गई है:

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

“वह सच्चिदानन्द परब्रह्म पुरुषोत्तम सब प्रकार से सदा-सर्वदा परिपूर्ण है। यह जगत् भी उस परब्रह्म से पूर्ण ही है; क्योंकि यह पूर्ण उस पूर्ण पुरुषोत्तम से ही उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार, परब्रह्म की पूर्णता से जगत् पूर्ण होने पर भी वह परब्रह्म परिपूर्ण है। उस पूर्ण में से पूर्ण को निकाल लेने पर भी वह पूर्ण ही बच रहता है।”

जब हम हिन्दू-धर्म के बारे में बोलते हैं, तब इसका अर्थ किसी एक धर्म से नहीं होता। यह कई धर्मों का एक संघ है, जैसे वैष्णवधर्म, शैवधर्म, शाक्तधर्म एवं ये सब अपने-आप में पूर्ण धर्म हैं। वैष्णवधर्म, शैवधर्म और शाक्त धर्म के अपने धर्मविज्ञान, पुराणशास्त्र, कर्मकांड और धार्मिक संगठन हैं और लाखों इनके अनुयायी हैं। हिन्दू-धर्म परमसत्ता तक पहुँचने के कई मार्गों को एक सूत्र में बाँधनेवाला धागा है। हिन्दू धर्म का धर्म के प्रति



वैज्ञानिक दृष्टिकोण का पता इस बात से चलता है कि यह सभी धार्मिक तथ्यों का वर्गीकरण करता है। हिन्दू धर्म मनुष्य को योग शीर्षक के अंतर्गत पूर्णता प्राप्त करने के विशिष्ट निर्देश देता है। यह मानवीय स्वभाव और प्रकृति के अनुसार चार प्रकार के योगों को वर्णन करना है: ज्ञानयोग, भक्तियोग, राजयोग और कर्मयोग।

**ज्ञानयोग** उन व्यक्तियों के लिए है, जो ज्ञान के द्वारा परमसत्ता, अर्थात् ईश्वर से एकाकार होना चाहते हैं। कुछ ऐसे लोग हैं, जो स्वभाव से दर्शनिक होते हैं। उनके लिए प्रत्यय का अधिक महत्व है। सुकरात और बुद्ध इसके उदाहरण हैं। इस योग का लक्ष्य अज्ञानता के साम्राज्य को विवेक से नष्ट करना है, चिंतन से अमर्त सत्ता को यथार्थ बनाना है। चिंतन, मनन के कई तरीके बताए गए हैं; जैसे इस धर्म के अनुयायी को यह सलाह दी जाती है कि वह जिस भाषा का प्रयोग करता है, उसकी जाँच करे और इसके निहितार्थों का चिंतन करे।

कहा गया है कि 'ज्ञानयोग' परमसत्ता तक पहुँचने का सबसे छोटा रास्ता है। लेकिन, यह सबसे कठोर भी है। सच तो यह है कि बुद्धि मानव जीवन को संचालित तो करती है, लेकिन इससे अधिक भावना संचालित करती है और मानव-जीवन में जितनी भावनाएँ हैं, उनमें सबसे शक्तिशाली और व्यापक भक्ति-भावना है। इसके अतिरिक्त मनुष्य जिसकी भक्ति करता है, वह उसके समान बन जाना चाहता है। यही '**भक्तियोग**' है। इस योग के अगणित अनुयायी हैं और यह सबसे अधिक लोकप्रिय है। सोलहवीं शताब्दी में महान् हिन्दी कवि गोस्वामी तुलसीदास इस योग के महान् अनुयायियों में एक हैं।

ईश्वर तक पहुँचने का तीसरा मार्ग **कर्मयोग** है। यह उन लोगों के लिए है, जिनकी प्रवृत्ति कर्म करने की है। कर्म जीवन का मुख्य तत्व है। सच तो यह है कि मनुष्य कर्म करने के लिए बना है। हिन्दू धर्म कहता है कि ईश्वर को पाने के लिए मठ की शरण लेने की ज़रूरत नहीं है। मनुष्य अपने दैनिक जीवन में उसकी अनुभूति प्राप्त कर सकता है। अनासक्त होकर कर्म करने से ही मनुष्य में ज्ञानोदय होता है। गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है:

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

“तेरा कर्म करने मात्र में ही अधिकार हो, फल में कभी नहीं और तू कर्मों के फल की वासनावाला भी न हो तथा अकर्म करने में भी तेरी प्रीति न हो।”

इसका तात्पर्य यह है कि जो मनुष्य कर्तव्य के लिए कर्तव्य करता है और फल की आशा नहीं करता है वह योगी है। इस प्रकार कर्मयोगी केवल कर्म करना जानता है। वह एक काम कर लेता है, तो फिर दूसरा काम करता है और हर काम निष्ठा से करता है।

मनोवैज्ञानिक प्रयोग से ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग **राजयोग** है। यह उन लोगों के लिए है, जो मूलरूप से वैज्ञानिक प्रवृत्ति के हैं। इस योग में मनुष्य अपने शरीर पर प्रयोग नहीं करता (हालाँकि, इस क्रिया में शरीर का भाग भी रहता है), बल्कि अपनी आत्मा पर प्रयोग करता है। इस प्रकार के प्रयोग कुछ निर्धारित मानसिक अभ्यास का रूप लेते हैं। राजयोगी को किसी मत में आँख मूँद कर विश्वास नहीं करना होता। फिर भी, प्रयोग के लिए किसी प्राक्कल्पना की आवश्यकता तो पड़ती ही है।

मनुष्य की हिन्दू अवधारणा इस आधारभूत सिद्धांत पर आश्रित है कि वह एक स्तरित प्राणी है। मनुष्य के मुख्य चार स्तर हैं: पहला देह, दूसरा मन, जिससे वह अवगत है, तीसरा वैयक्तिक अवचेतन का साम्राज्य। लेकिन, हिन्दू प्राक्कल्पना की विशेषता इसका चौथा स्तर है, वह स्वयं सत्ता है, जो असीम और शाश्वत है। हिन्दू-धर्म इस मनोविश्लेषण से सहमत है कि यदि हम अपनी खोई हुई वैयक्तिक समग्रता के एक भाग को भी संजो कर लें, तो हमें अपनी शक्तियों के विलक्षण विस्तार की अनुभूति हो जाए। राजयोगी शरीर से एक व्यक्ति रहता है, लेकिन भावना में उसे एक शाश्वत, विश्वजनीन और पूर्ण व्यक्ति होना होगा।

हिन्दू-धर्म के अनुसार, यह वर्गीकरण ऐकांतिक नहीं है, यह किसी विशेष मनोवृत्ति की प्रधानता पर ही आश्रित है।

हिन्दू धर्म में शंकर के निर्गुण ब्रह्म और रामानुज के सगुण ब्रह्म दोनों को स्वीकार किया गया है। दोनों समान रूप से सही हैं। यह भक्त पर निर्भर करता है कि वह सगुण ब्रह्म की उपासना करे या निर्गुण ब्रह्म की। इन दोनों में कोई विरोधाभास नहीं है। ये दोनों दो भिन्न दृष्टिकोणों से सत्य हो सकते हैं। साथ ही, जिस प्रकार से ईश्वर की कल्पना की जाती है, उसी प्रकार से उसका

जगत् के साथ संबंध होता है। अगर वह सगुण ब्रह्म है, तो वह सृष्टि-कर्ता (ब्रह्मा), पालनकर्ता (विष्णु) और संहारकर्ता (शिव) है। लेकिन अगर वह निर्गुण ब्रह्म है, तो हर मामले में संघर्ष से ऊपर और सीमितता से अलग है।

हिन्दू-धर्म विभिन्नता में एकता का प्रतीक है। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है: 'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव', अर्थात् 'यह संपूर्ण जगत् सूत्र में मणियों के सदृश मुझमें गुँथा हुआ है।' हिन्दू धर्म ने कभी किसी नीरस, निष्क्रिय एकरूपता की नीति का समर्थन या पालन नहीं किया, चाहे धर्म का क्षेत्र हो या संस्कृति का। इस प्रकार की नीति असहिष्णुता और हिंसा पर आधारित होती है, जिनका हिन्दू धर्म में कोई स्थान नहीं है। ऋग्वेद में यह कहा गया है, 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति', अर्थात् सत्य एक है लेकिन ब्राह्मण इसे भिन्न-भिन्न नामों से पुकारता है। यही बात गीता में की गई है:

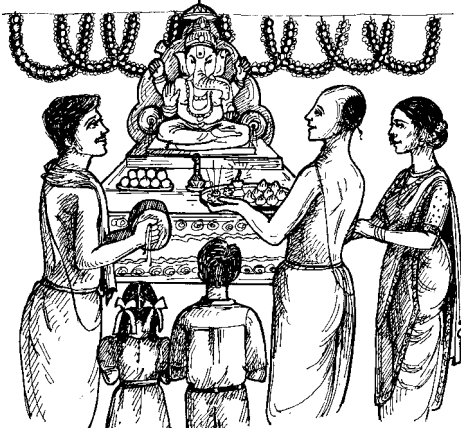
ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

मम वर्तमानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

अर्थात्, 'जो मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं उनको उसी प्रकार भजता हूँ, इस रहस्य को जानकर ही बुद्धिमान् मनुष्य सब प्रकार से मेरे मार्ग के अनुसार बरतते हैं।'

ईश्वर ने विभिन्न उपासकों, कालों और देशों को ध्यान में रखकर विभिन्न धर्म बनाए हैं। वह किसी भी ओर से कंक खा सकता है, उसका स्वाद मीठा ही लगेगा।

- लेखक प्रख्यात साहित्यकार, विचारक एवं दर्शनिक थे।



## The Need to Re-vitalise Hinduism

● Jagmohan

Suppose, as a candidate for an election or otherwise, I say that I am a true follower of true Hinduism which, in my view, is nothing but a form of spiritual secularism; which believes that God/Truth can be reached through different routes and by diverse means; which adheres to no fixed dogma; which is based upon principles and not on persons; which continuously endeavours to enlarge the aperture of mind to secure better and better insight and to comprehend Reality in greater and greater depth; which assigns the same spark of divinity to every individual; which treats the spirit of Ram Rajya, that is, the spirit of establishing a fair and just order by fair and just means, as a guiding star for the polity and administration of the State; which practises and propagates that 'Jiva is Shiva', that is, in the service of the living creatures lies the service to the Creator; which is tolerant and appreciative of other systems of belief and considers them branches of the same tree; then, which constitutional provision, which constitutional value and in which part of our constitutional scheme do I violate and in what way do I damage the foundational planks of our constitutional edifice or harm the principles of secularism, socialism, democracy or republicanism?

Clearly, the answer to the above question is: none. I do not undermine any of the objectives of our Constitution. On

the other hand, I help in attainment of these objectives by providing spiritual underpinnings to them. Unfortunately, it is not being realised in our country that no seed, howsoever potent, can strike roots in dry and dreary land; and no plant, howsoever green can survive if the environment around it gets polluted.

Every institution, every part of our constitutional scheme, has a body and a soul, a structure and an underlying spirit. In the absence of a congenial atmosphere, the structure remains, the spirit has died; the bones exist, the soul has departed. And, when in an inspirational vacuum, we are artificially attempting to "give unto 'Caesar' things that are 'Caesar's' and to 'God' things that are 'God's'", we are doing nothing but corrupting both 'Caesar' and the 'God' and entrusting our maladies for cure, not to the surgeons, but to the butchers.

The fundamental challenge that the country faces today is how to provide a healthy soil and a healthy climate in which the seeds of her constitution can get embedded deep into her psyche and flower into genuine articles of faith. And this challenge can be met mainly by redefining her cultural heritage and by reconstructing the Hindu thought and by washing out the mud and muck that her culture and religion have accumulated in the course of its long march of 5,000 years. The pure has to be separated from the fake and profound from the profane. The gems have to be picked up and the stones thrown away. Only a regenerated culture and re-awakened Hinduism can answer the country's manifold fields.

Sri Aurobindo, one of the greatest sages of modern India, was never tired of telling the people that "a great future for India could be built only on the spiritual greatness of her past". Swami Vivekananda was still more forthright. He said: "Each nation, like each individual, has one theme in life,

which is at its centre. If any nation attempts to throw off its national vitality, that nation dies. In India, religious life forms the centre."

To this, I may add my own humble experience. During my long years in public service, wherein I had the opportunity to come in contact with various people from jhuggi-dwellers and petty vendors to Prime Ministers and Presidents, I always felt that some foundational plank was missing from our edifice and unless we provide that plank, our polity would become more and more exploitative and more and more prone to collapse and extinction.

The need for re-invigoration of Hinduism, which has been exposed to ravages of a vast span of history, is obvious. In fact, Hinduism itself recognises that change and dynamism are parts of life and of cosmic reality. It believes that the universe is continuously changing. It has its own creative process, its own self generating flux. One dynamic equilibrium is continuously giving way to another dynamic equilibrium. As pointed out by the American philosopher, Emerson, "The Hindu thought suggests that our life is an apprenticeship to the truth, that around every circle another circle can be drawn." Monier william, too, significantly observed: "The Hindus were Spinozates 2000 years before the existence of Spinoza, Darwinians many centuries before Darwin and Evolutionists before the doctrine of Evolution had been accepted by the scientists of our time."

It is time we restore the long lost dynamic equilibrium of Hinduism, rejuvenate it and use it to carve out a new style of social and cultural life, a new design for our polity and administration.

A fresh constructive and creative impulse, therefore, needs to be imparted to Hinduism so that it can bring on the scene a new Hindu, a Catholic, compassionate and contemplative Hindu with a clean conscience, a Hindu who

cherishes the positive values of our culture, of 'yagya' and 'tapasya', of 'satyam', 'shivam' and 'sundaram', and is ever-willing to synthesize them, in the highest tradition of Hindu thought of moving from a lower level of truth to a higher level of truth, with new knowledge and new perceptions that have since become available to mankind.

I would grade Hindu thoughts and practices at three levels. Level-I would cover the core of Hinduism, its fundamental message of oneness and underlying unities-unity in the diversity of man, unity in the diversity of nature, unity in the diversity of religion. In Level-II would fall the beliefs and practices which are not contrary to its basic philosophy and which came into existence in response to the religious needs of the common folk who could not grasp the intellectual content of its core and who had to depend on temples, images of gods and goddesses, and their symbols. In Level-III would come all the spurious rituals, rites, cults, superstitions and fake godmen.

An awakened Hinduism would involve total elimination of Level-III, refurbishing of Level-II and chiselling of Level-I

***-The writer is the former Governor of Jammu & Kashmir and Central Government Minister***

## WHO IS A HINDU?

**V.D. Savarkar**

According to Savarkar, Hindus are patriotic inhabitants of Bharatavarsh, those consider India, Bharat to be their fatherland (*pitribhumi*) as well as their "holyland" (*punyabhumi*). Savarkar thus extends the concept of "Hindu" beyond religious adherence to a term of ethnic nationalism identifying Hindus with the inheritors of a postulated Aryan race "indigenous" to Greater India. Sarvakar includes all Dharmic religions in the term "Hindusim"

## THE VITAL DIFFERENCE

● Arun Shourie

*(Shri Arun Shourie posted a lengthy article on internet on 31-12-2007 delineating the vital differences between the Middle-East religions i.e. Christianity, Islam etc. and the Indian religions like Hinduism, Buddhism etc. Here is an abridged version of the article giving the essential points as depicted by the author-Editor)*

### According to Middle East religions -

- Reality is simple;
- It has been revealed to one man;
- He has put it in one book;
- That book is inerrant as well as exhaustive; so that whatever is in it is true; that it is true for all time; and that whatever is not in it or is contrary to what is in it, is false or useless or worse;
- But the book is difficult to understand; hence, you need a guide, an intermediary, a monitor: in a word, the church, or the *ulema*
- The book covers, the intermediary must cover every aspect of life: there is no distinction between the private and the public sphere, between the Secular and the Religious, between the State and the Church. These doctrines are totalitarian-in both senses: they insist on governing the totality of life.
- The test of piety is adherence to that book and to the prescriptions of that intermediary in every sphere of life;
- It is the duty of that intermediary, indeed of every believer

to ensure that all come to accept and adhere to the message-there is only one Message;

- As the Message is the 'truth', the whole Truth and nothing but the Truth, as there is no truth besides it, those who do not accept the Message are cursed; worse, they are thwarting the will of Allah, or its equivalent.
- Hence, it is the duty of every believer, and even more so of that intermediary to use all means to make them accept the message, and if, even after being offered the opportunity to accept it, they refuse, to vanquish them all together.

When these elements are present, the tradition will have one singular objective: dominance. It will become an ideology of power, a dogma that rationalises everything in the pursuit of hegemony. The dogma will necessarily gravitate to, among other things, violence.

**Contrast those elements with propositions that are central to the Indic traditions:**

- Reality is multilayered complexity: both in the sense that there are layers within layers of it, and in the sense of each element mingling into others: the Buddhist master Thich Nhat Hanh refers to the latter as 'inter-being'.
- It has not been revealed exclusively to one person: several have glimpsed it;
- They have put down approximate descriptions of that reality as well as hints of how to glimpse it in some books: these are travel guides;
- Perceiving that truth is an overwhelming, incomparable experience; it is the one joy that lasts. This life gives each of us a unique opportunity to bathe in that effulgence. If we don't, the loss will be ours-but that is about it: the truth is not affected; the guides are not falsified;
- It is not just the Book or some singular great figure who

can teach us; everything, every event, every relationship can be a teacher guiding us to glimpse the truth, indeed. Our object should be to make everything teach us. The essential points are three; different ways will suit different persons; second, the individual is the person who has to strive-as 'an island unto himself'; third, the striving, the search is an inner-directed one. It has nothing to do with the State or power or dominance over nature or man;

- In pursuing this inner-directed search, indeed in leading one's life, the test is not adherence to any of these travel guides, nor obedience to any intermediary, but **darshan**-the traveller's own experience: do not mistake the finger pointing to the moon-that is, my teaching-for the moon, the reality, the Buddha counsels.
- Every single element in these traditions guides and pulls the believer in the direction that is the exact opposite of the Middle Eastern traditions. Reality is multilayered, hence no description of it is final: tolerance follows as an article of faith. The search is to be an inner-directed one. The touchstone is not that I am adhering to what some book says or what some person, howsoever worthy, prescribed. The touchstone is my own experience. The consequence of even this single article is immense and radical. The Gita is set in a battlefield. At the end, Arjuna declares that all his doubts are settled. He goes into a gory battle. Yet Gandhiji derived non-violence from it. The orthodox berated him. Where do you get the authority to advance such a notion, they demanded. Gandhiji's answer? 'From here, my heart'. 'What is written in this book', he says is *Anasakti Yoga*, 'It is the result of thirty years' unremitting effort to live the Gita in my life.

***(The author is an eminent writer, journalist and a former Central Government Minister)***



## स्थितप्रज्ञता-गीता के संदर्भ में

### ● डॉ. धर्मवीर

आर्यावर्त के सभी आर्य (हिन्दू) वेदों को सर्वेपरि धार्मिक प्रमाण स्वीकारते हैं। महर्षि दयानन्द तो 'नास्तिको वेद निन्दकः' कहते हुए थकते नहीं। वैदिक वाङ्मय में उपनिषदों का विशेष स्थान है।

उन्हीं उपनिषदों का दर्शन श्रीमद्भगवद्गीता में पूर्ण निष्ठा से संजोया गया है।

एक प्रसिद्ध श्लोक है:

**गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्र विस्तरैः।**

**या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥**

अर्थात् अन्य शास्त्रों के विवेचन का क्या प्रयोजन क्योंकि केवल गीता का ही सम्यक् गायन (पठन और मनन) करना लाभप्रद है जोकि स्वयं पद्मनाभ (अर्थात् जिस की नाभि से कमल की उत्पत्ति हुई) अर्थात् भगवान विष्णु के मुखारविन्द से प्रकट हुई, सुनाई गई।

यह है गीता की महिमा जिस में विस्तार से स्थितप्रज्ञ की स्थिति का वर्णन किया गया है।

वैदिक मनीषा ने सृष्टि की संरचना के सम्पूर्ण काल को जो कि 4 अरब 32 करोड़ वर्ष का है, चार युगों में विभाजित किया है: सत् युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग। प्रायः ऐसा माना जाता है कि सत् युग में 'सत्यमेव जयते' की स्थिति शत-प्रतिशत रही होगी, त्रेता में वह 75% हुई, द्वापर में आते 50 और कलियुग में तो 25% (शायद इससे भी कम) रह गई। सम्भवतः इसीलिए कहा जाता है 'कलजुग केवल नाम अधारा' परन्तु प्रभु के सार्थक स्मरण के लिए भी तो स्थितप्रज्ञ की मनःस्थिति बननी चाहिए।

द्वापर का नायक: शैशव नन्द-यशोदा। दिवकी की गोद में; नटखट के रूप में गोपियों के कान्हा; युवावस्था में गोवर्धन उठा कर रक्षक के रूप में, सुदामा के सखा रूप में और 'धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र' में एक सारथि के रूप में देखा जाता है। यह तो पाण्डव पक्ष की बुद्धिमत्ता कि उन्होंने अक्षौहिणी सेना की तुलना में श्रीकृष्ण को सारथि के रूप में वरण किया क्योंकि यह धर्म और अधर्म, सत्य और असत्य, न्याय और अन्याय, सुकर्म और दुष्कर्म के बीच का युद्ध था। भगवान ने स्वयं कहा था:

**परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।**

**धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवाभि युगे युगे॥**

और द्वापर युग में योगीराज कृष्ण के रूप में वह प्रकट हुए। पूतना, कंस, शिशुपाल आदि सब का संहार कर उन्होंने अपने प्राकट्य को सार्थक किया।

गीता को तो वैदिक संस्कृति का सार बताते हुए स्वयं श्रीकृष्ण कहते हैं:

**गीतासारमिदं शास्त्रं सर्वं शास्त्र सुनिश्चितम्।**

**यत्र स्थितं ब्रह्मज्ञानं वेदशास्त्र सुनिश्चितम्॥**

गीता का सारभूत यह शास्त्र सम्पूर्ण शास्त्रों द्वारा भली भाँति निश्चित सिद्धान्त है जिसमें वैदिक वाङ्मय का सम्पूर्ण ब्रह्मज्ञान उपलब्ध है।

मैं गीता को प्रश्नोत्तरी महाकाव्य अथवा गीतिकाव्य मानता हूँ क्योंकि इस अठारह अध्यायी गीता में प्रश्नकर्ता हैं अर्जुन और उनका तर्कसंगत समाधान प्रस्तुत करते हैं स्वयं सारथि रूप श्रीकृष्ण।

प्रथम अध्याय तो 'विषाद योग' का है। 'सेनयोः उभयोः मध्ये' पहुँच कर शत्रु पक्ष में खड़े अपने अत्यन्त आत्मीय जनों को देख, क्या इन के रक्त से रंजित विजय को मैं प्राप्त करना चाहता हूँ, ऐसा सोच अर्जुन के मन में विषाद की भावना उत्पन्न होनी स्वाभाविक थी। तो 'गाण्डीवं संस्ते हस्तात्' की मनःस्थिति वाले अर्जुन को सारगर्भित तार्किक उपदेश एवं आदेश देना कृष्ण का दायित्व था।

दूसरा अध्याय यद्यपि सांख्य योग पर आधृत है परन्तु श्रीकृष्ण ने अर्जुन के मोह और कायरता युक्त विषाद की निन्दा करते हुए उसे युद्ध के लिए उत्साहित किया और स्वधर्म का पालन करते हुए कर्म योग का स्वरूप

समझाया। इसी प्रसंग में जब श्रीकृष्ण ने वैराग्यपूर्वक बुद्धि के शुद्ध, स्वच्छ और निश्चल हो जाने पर ही परमात्मा की प्राप्ति बताई तो अर्जुन को ऐसी स्थिर बुद्धि (Balanced intellect) पुरुष के विषय में अपने सारथि से चार प्रश्न पूछने पड़े:

**स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।**

**स्थितधीः किं प्रभषेत किमासीत ब्रजेत किम्॥ ( 2-54 )**

हे केशव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये तीनों जिसके स्वरूप में हों समाधि में स्थित परमात्मा को प्राप्त हुए स्थिरबुद्धि पुरुष का क्या लक्षण है? वह स्थिर बुद्धि पुरुष कैसे बोलता है, कैसे बैठता है और कैसे चलता है? ये चारों प्रश्न अपने आप में गम्भीर हैं।

इन प्रश्नों के उत्तर में श्रीकृष्ण पूर्ण रूपेण त्याग की बात करते हैं:

**प्रजाहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।**

यहाँ तक कि मन में विचार रूप में उठी हुई सभी अभिलाषाओं का भी जो परित्याग करता है और आत्मा से आत्मा में ही सन्तुष्ट रहता है, दुःख की स्थिति में जो उद्विग्न नहीं होता, सुख प्राप्ति पर जो निःस्पृह (इच्छा रहित) रहता है तथा जिसके राग, भय और क्रोध के भाव नष्ट हो गए हों, ऐसा व्यक्ति ही मुनि रूप में स्थितप्रज्ञ या स्थिरबुद्धि वाला कहा जाता है। जो पुरुष सर्वत्र स्नेह रहित होकर शुभ या अशुभ वस्तु को प्राप्त होकर भी न प्रसन्ता व्यक्त करता है न द्वेष जताता है यही उसका 'प्रभाषण' है।

स्थितप्रज्ञ पुरुष बैठता कैसे है, इसके लिए श्रीकृष्ण अत्यन्त सटीक उपमा का प्रयोग करते हुए कहते हैं:

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गनीव सर्वशः।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिठिष्ठा॥ (2-58)

जिस प्रकार कछुवा अपने अंगों को संकुचित करके खोल के भीतर कर लेता है, उसी तरह जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों को इन्द्रिय विषयों से खींच लेता है, वह पूर्ण चेतना में दृढ़ता पूर्वक स्थिर होता है।

विषयों से निवृत्ति चाहे हो जाए परन्तु रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि से निवृत्ति केवल परमात्मा के साक्षात्कार से ही सम्भव हो सकती है। ये इन्द्रियाँ यत्न करते हुए भी उस बुद्धिमान पुरुष के मन का बलपूर्वक मन्थन करती ही

रहती हैं। इसलिए ऐसे साधक को चाहिए कि वह अपनी सभी दसों इन्द्रियों को अपने वश में करके अन्तर्मन से मेरे परायण होकर ध्यान करे क्योंकि जिस की इन्द्रियाँ वश में हैं उसकी बुद्धि स्थिर है।

बौद्ध दर्शन में भी एक शब्द है 'उपेक्खा' अर्थात् सन्तुलन (यह संस्कृत के 'उपेक्षा' शब्द का ही अपभ्रंश रूप है)। बौद्ध धर्म में चार ब्रह्म (उत्तम) विचारों की चर्चा होती है। वे हैं (प्रेम से परिपूर्ण) दया, करुणा, आनन्द और उपेक्खा। उपेक्खा सुख दुःख, हानि-लाभ के मध्य केवल सन्तुलन बनाए रखता है किन्तु इन वस्तुओं के प्रति वैराग्य की भावना की अपेक्षा नहीं करता। दूसरी ओर स्थितप्रज्ञ किसी वस्तु से मोह भी नहीं रखता। यह है सन्तुलन के आगे की सीढ़ी-निलिपलता।

शायद इसीलिए 'उपेक्खा' से कहीं अधिक सारगर्भित है 'स्थितप्रज्ञता'। इस अध्याय का 62वाँ और 63वाँ श्लोक तो कमाल के हैं। स्थितप्रज्ञ के लिए मननीय। विषयों का चिन्तन मात्र करने वाला पुरुष उन विषयों में इतना आसक्त हो जाता है कि आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और इच्छा पूर्ति न होने से होता है क्रोध और फिर मनुष्य बढ़ता है अपने सर्वनाश की ओर:

**क्रोधाखवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः**

**स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥ ( 2-63 )**

क्रोध से मोह, मोह से स्मरणशक्ति का हास, इस हास से बुद्धि नष्ट जो जाती है और बुद्धि नष्ट होने पर मनुष्य भव-कूप में पुनः गिर जाता है।

इसी प्रज्ञा, मेधा, धी (बुद्धि) के सम्बन्ध में प्रणव अर्थात् गायत्री मन्त्र में क्या सुन्दर प्रार्थना की गई है। 'धियो यो नः प्रचोदयात्' अर्थात्

**तेरा ही धरते ध्यान हम माँगते तेरी दया।**

**ईश्वर हमारी बुद्धि को श्रेष्ठ मार्ग पर चला॥**

वस्तुतः यहाँ बुद्धि का मांगल्य ही अभिप्रेत है। इसलिए जिस पुरुष की इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों से सब प्रकार से विरत हो कर उसके वश में हैं उसी की बुद्धि निस्सन्देह स्थिर है, वही स्थितप्रज्ञ है।

और अध्याय के अन्त में श्रीकृष्ण ने इस स्थिति को 'ब्राह्मी स्थिति' की संज्ञा दे कर कहा कि यही आध्यात्मिक तथा ईश्वरीय जीवन का पथ है।

इस समस्त विवेचन की तुलना 'ईशोपनिषद्' के प्रथम श्लोक से की जा सकती है:

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य सिद्दधनम्॥

ईश्वरीय अवस्थिति का ज्ञान और त्याग भाव से ही उपभोग की वृत्ति जहाँ एक ओर यह माया मोह के आकर्षण से बचाती है, वहाँ स्थितप्रज्ञता, के सोपान से मोक्ष की ओर ले जाने वाली भी होती है।

अन्ततोगत्वा अपने पारंगत गुरु (श्रीकृष्ण) से तत्सम्बन्धी अनेकों शंकाओं के समाधान के बाद जब शिष्य (अर्जुन) की बुद्धि ठिकाने आती है तो उसे स्वीकारना पड़ता है:

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाग्युत।

स्थितोऽस्मि गत संदेहः करिष्ये वचनं तव॥

- 'वरेण्यम्', ए-1055 सुशान्त लोक-1, गुड़गाँव (हरियाणा)

## हिन्दू कौन?

आचार्य विनोबा भावे

जो वर्णों और आश्रमोंकी व्यवस्था में निष्ठा रखनेवाला, गो-सेवक, श्रुतियों को माता की भाँति पूज्य करनेवाला तथा सब धर्मों का आदर करनेवाला है; देवमूर्ति की जो अवज्ञा नहीं करता, पुनर्जन्मको मानता और उससे मुक्त होनेकी चेष्टा करता है तथा जो सदा सब जीवोंके अनुकूल बर्ताव को अपनाता है वही 'हिन्दू' माना गया है। हिंसासे उसका चित्त दुःखी होता है, इसलिये उसे 'हिन्दू' कहा गया है।

### एक अन्य परिभाषा

“ओंकारमूलमन्त्राद्यः पुनर्जन्मदृढाशयः।

गोभक्तो भारतगुरुर्हिन्दुर्हिंसनदूषकः।” (माध्यवदिग्विजय)

अर्थात् (1) ओंकार को मूलमंत्र मानने वाला, (2) पुनर्जन्म में विश्वास करने वाला (3) गोभक्त (4) जिसका प्रवर्तक भारतवर्ष का हो, और (5) हिंसा को दूषित माननेवाला ही “हिन्दू” कहा जाता है।

# आर्य संस्कृति का मंगल प्रतीक - स्वस्तिक

● प्रो. योगेश चन्द्र शर्मा

अत्यन्त प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति में स्वस्तिक को मंगल-प्रतीक माना जाता है। इसीलिए किसी भी शुभ कार्य को करने से पहले स्वस्तिक चिन्ह अंकित करके उसका पूजन किया जाता है। गृहप्रवेश से पहले मुख्य द्वार के ऊपर स्वस्तिक चिन्ह अंकित करके कल्याण की कामना की जाती है। देवपूजन, विवाह, व्यापार, बहीखाता पूजन, शिक्षारम्भ तथा मुण्डन-संस्कार आदि में भी स्वास्तिक-पूजन आवश्यक समझा जाता है। महिलाएँ अपने हाथों में मेहन्दी से स्वस्तिक चिन्ह बनाती हैं। इसे दैविक आपत्ति या दुष्टात्माओं से मुक्ति दिलाने वाला माना जाता है।

‘स्वस्तिक’ शब्द सु+अस+क से बना है। ‘सु’ का अर्थ अच्छा, ‘अस’ का अर्थ ‘सत्ता’ या ‘अस्तित्व’ और ‘क’ का अर्थ ‘कर्त्ता’ या करने वाले से है। इस प्रकार ‘स्वस्तिक’ शब्द का अर्थ हुआ ‘अच्छा’ या ‘मंगल’ करने वाला। ‘अमरकोश’ में भी ‘स्वस्तिक’ का अर्थ आशीर्वाद, मंगल या पुण्यकार्य करना लिखा है। अमरकोश के शब्द हैं-‘स्वस्तिक, सर्वतोऽद्भुत’ अर्थात् ‘सभी दिशाओं में सबका कल्याण हो।’ इस प्रकार ‘स्वस्तिक’ शब्द में किसी व्यक्ति या जाति विशेष का नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व के कल्याण या ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ की भावना निहित है। ‘स्वस्तिक’ शब्द की निरुक्ति है-‘स्वस्तिक क्षेम कायति, इति स्वस्तिकः’ अर्थात् ‘कुशलक्षेम या कल्याण का प्रतीक ही स्वस्तिक है।’ प्राचीन काल में हमारे यहाँ कोई भी श्रेष्ठ कार्य करने से पूर्व मंगलाचरण लिखने की परम्परा थी, लेकिन चूँकि आम आदमी के लिए मंगलाचरण लिखना सम्भव नहीं था, इसलिए ‘पातंजल योग’ के अनुसार ऋषियों ने स्वस्तिक चिन्ह का निर्माण किया, ताकि उसे बनाने मात्र से सभी



कार्य सानन्द सम्पन्न हो सकें।

स्वस्तिक में एक दूसरे को काटती हुई दो सीधी रेखाएँ होती हैं, जो आगे चलकर मुड़ जाती हैं। इसके बाद भी ये रेखाएँ अपने सिरों पर थोड़ी और आगे की तरफ मुड़ी होती हैं। स्वस्तिक की यह आकृति दो प्रकार की हो सकती है। प्रथम स्वस्तिक, जिसमें रेखाएँ आगे की ओर इंगित करती हुई हमारे दायीं ओर मुड़ती हैं। इसे 'दक्षिणावर्त स्वस्तिक' कहते हैं। दूसरी आकृति में रेखाएँ पीछे की ओर संकेत करती हुई हमारे बायीं ओर मुड़ती हैं। इसे 'वाम वर्त स्वस्तिक' कहते हैं। भारतीय संस्कृति में इसे अशुभ माना जाता है। जर्मनी के तानाशाह हिटलर के ध्वज में यही 'वामावर्त स्वस्तिक' अंकित था। परिणामस्वरूप उसे पराजय का मुख देखना पड़ा।

स्वस्तिक की दो रेखाएँ पुरुष और प्रकृति की प्रतीक हैं। भारतीय संस्कृति में स्वस्तिक चिन्ह को विष्णु, सूर्य, सृष्टिचक्र तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का प्रतीक माना गया है। कुछ विद्वानों ने इसे गणेश का प्रतीक मानकर इसे प्रथम वन्दनीय भी माना है। पुराणों में इसे सुदर्शन चक्र का प्रतीक माना गया है। वायवीय संहिता में स्वस्तिक को आठ यौगिक आसनों में एक बतलाया गया है। यास्काचार्य ने इसे ब्रह्म का ही एक स्वरूप माना है। कुछ विद्वान् इसकी चार भुजाओं को हिन्दुओं के चार वर्णों की एकता का प्रतीक मानते हैं। इन भुजाओं को ब्रह्मा के चार मुख, चार हाथ और चार वेदों के रूप में भी स्वीकार किया गया है। स्वस्तिक घनात्मक चिन्ह या 'प्लस' को भी इंगित करता है, जो अधिकता और सम्पन्नता का प्रतीक है। स्वस्तिक की खड़ी रेखा को स्वयं ज्योतिर्लिंग का तथा आड़ी रेखा को विश्व के विस्तार का भी संकेत माना जाता है। इन चारों भुजाओं को चारों दिशाओं के कल्याण की कामना के प्रतीक के रूप में भी स्वीकार किया जाता है, जिन्हें बाद में इसी भावना के साथ रेडक्रॉस सोसायटी ने भी अपनाया। 'इलेक्ट्रॉनिक थ्योरी' ने इन दो भुजाओं को नैगेटिव और पोजिटिव का भी प्रतीक माना जाता है, जिनके मिलने से अपार ऊर्जा प्राप्त होती है। स्वस्तिक के चारों ओर लगाये जाने वाले बिन्दुओं को भी चार दिशाओं का प्रतीक माना गया है। एक पारम्परिक मान्यता के अनुसार चातुर्मास में स्वस्तिक व्रत करने तथा मन्दिर में अष्टदल से स्वस्तिक बनाकर उसका पूजन करने से महिलाओं को वैधव्य का भय नहीं रहता। पद्मपुराण में इससे संबंधित एक कथा का भी उल्लेख है।

हमारे मांगलिक प्रतीकों में स्वस्तिक एक ऐसा चिन्ह है, जो अत्यन्त प्राचीन काल से लगभग सभी धर्मों और सम्प्रदायों में प्रचलित रहा है। भारत में तो इसकी जड़ें गहराई से पैठी हुई हैं ही, विदेशों में भी इसका काफी अधिक प्रचार प्रसार हुआ है। अनुमान है कि व्यापारी और पर्यटकों के माध्यम से ही हमारा यह मांगलिक प्रतीक विदेशों में पहुँचा। भारत के समान विदेशों में भी स्वस्तिक को शुभ और विजय का प्रतीक चिन्ह माना गया। इसके नाम अवश्य ही अलग-अलग स्थानों में, समय-समय पर अलग-अलग रहे।

सिन्धु-घाटी से प्राप्त बर्तन और मुद्राओं पर हमें स्वस्तिक की आकृतियाँ खुदी मिली हैं, जो इसकी प्राचीनता का ज्वलन्त प्रमाण हैं। सिन्धु-घाटी सभ्यता के लोग सूर्यपूजक थे और स्वस्तिक चिन्ह, सूर्य का भी प्रतीक माना जाता रहा है। ईसा से पूर्व प्रथम शताब्दी की खण्डगिरि, उदयगिरि की रानी की गुफा में भी स्वस्तिक चिन्ह मिले हैं। मत्स्य पुराण में मांगलिक प्रतीक के रूप में स्वस्तिक की चर्चा की गयी है। पाणिनी के व्याकरण में भी स्वस्तिक का उल्लेख है। पाली भाषा में स्वस्तिक को साक्षियों के नाम से पुकारा गया, जो बाद में 'साखी' या 'साकी' कहलाये जाने लगे। जैन परम्परा में मांगलिक प्रतीक के रूप में स्वीकृत अष्टमंगल द्रव्यों में स्वस्तिक का स्थान सर्वोपरि है। स्वस्तिक चिन्ह की चार रेखाओं को चार प्रकार के मंगल का प्रतीक माना जाता है। ये हैं-अरहन्त-मंगल, सिद्ध-मंगल, साहू-मंगल और 'केवलि पण्णत्ते धम्मो मंगल'। महात्मा बुद्ध की मूर्तियों पर और उनके चित्रों पर भी प्रायः स्वस्तिक चिन्ह मिलते हैं। अमरावती के स्तूप पर स्वस्तिक चिन्ह हैं। विदेशों में इस मंगल-प्रतीक के प्रचार-प्रसार में बौद्ध धर्म के प्रचारकों का भी काफी योगदान रहा है।

बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण ही जापान में प्राप्त महात्मा बुद्ध की प्राचीन मूर्तियों पर स्वस्तिक चिन्ह अंकित हुए मिले हैं। ईरान, यूनान, मैक्सिको और साइप्रस में की गई खुदाइयों में जो मिट्टी के प्राचीन बर्तन मिले हैं, उनमें से अनेक पर स्वस्तिक चिन्ह हैं। आस्ट्रिया के राष्ट्रीय संग्रहालय में अपोलो देवता की एक प्रतिमा है, जिस पर स्वस्तिक चिन्ह बना हुआ है। टर्की में ईसा से 2200 वर्ष पूर्व के ध्वज-दण्डों में अंकित स्वस्तिक चिन्ह मिले हैं। इटली के अनेक प्राचीन अस्थि कलशों पर भी स्वस्तिक चिन्ह हैं। एथेन्स में शस्त्रागार के सामने यह चिन्ह बना हुआ है। स्कॉटलैण्ड और आयरलैण्ड में

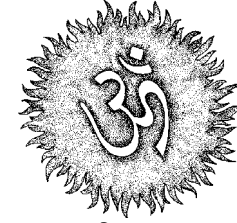
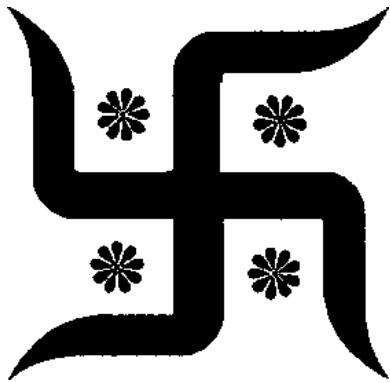
अनेक ऐसे प्राचीन पत्थर मिले हैं, जिन पर स्वस्तिक चिन्ह अंकित हैं। प्रारम्भिक ईसाई स्मारकों पर भी स्वस्तिक चिन्ह देखे गये हैं। कुछ ईसाई पुरातत्त्ववेत्ताओं का विचार है कि ईसाई धर्म के प्रतीक 'क्रॉस' का भी प्राचीनतम रूप स्वस्तिक ही है। छठी शताब्दी में चीनी राजा वू ने स्वस्तिक को सूर्य के प्रतीक के रूप में मानने की घोषणा की थी।

चीन में ताँगवंश के इतिहास-लेखक फुंगल्से ने लिखा है- 'प्रतिवर्ष सातवें महीने के सातवें दिन मकड़ियों को लाकर उनसे जाले में स्वस्तिक चिन्ह बुनवाते हैं। अगर कहीं किसी को पहले से ही जाले में स्वस्तिक चिन्ह बना मिल जाए तो उसे विशेष सैभाग्य का सूचक मानते हैं।' तिब्बत में मृतकों के साथ स्वस्तिक चिन्ह रखने की प्राचीन परम्परा रही है।

बेल्जियम के नामूग संग्रहालय में एक ऐसा उपकरण रखा है, जो हडडी से बना हुआ है। उस पर क्रॉस के कई चिन्ह बने हुए हैं तथा उन चिन्हों के बीच में एक स्वस्तिक चिन्ह भी है। इटली के संग्रहालय में रखे एक भाले पर भी स्वस्तिक का चिन्ह है। रेड इण्डियन स्वस्तिक को सुख और सौभाग्य का प्रतीक मानते हैं। वे इसे अपने आभूषणों में भी धारण करते हैं।

इस प्रकार हमारा मंगल-प्रतीक स्वस्तिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सदैव पूज्य और सम्माननीय रहा है तथा इसके इस स्वरूप में हमारे यहाँ आज भी कोई कमी नहीं आयी है।

-10/611-कावेरी पथ, मानसरोवर, जयपुर-302020 ( राजस्थान )



ओ३म्

ॐ में छिपा है स्वाथ्य-इस शब्द के उच्चारण से रोगों का उपचार सिद्ध हो गया है जो कि विदेशों में हुए अनुसन्धान और प्रकाशित रिपोर्टों से स्पष्ट है।

पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार के महर्षि बाबा रामदेव ने तो अपने योग शिवियों के माध्यम से देश-विदेश में अपने संक्षिप्त प्राणायाम पैकेज में ॐ शब्द को न केवल सम्मिलित किया है वरन् एक थैरिपी के रूप में प्रचारित प्रसारित करके लाखों लोगों को लाभान्वित किया है।

देश-विदेश के कुछ विद्वानों के विचार भी मंत्र के प्रति उखेखनीय है:-

1. पांच मिनट तक ॐ का जाप करने से केवल दो दिन में छात्रों के व्यवहार में परिवर्तन आ जाता है। पढ़ाई में एकाग्रता और विषय को समझने की क्षमता बढ़ जाती है। योग विज्ञान के अनुसार रोजाना 30 मिनट तक शांत बैठकर लगातार ॐ बोलने से 3 माह में स्मरण शक्ति बहुत अच्छी हो जाती है।

-डॉ. राजेश कपूर, पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार

2. ॐ के उच्चारण से नाभि से लेकर मस्तिष्क तक धमनियाँ सामान्य होने लगती हैं। रक्त प्रवाह सामान्य हो जाता है। ॐ का असर नकारा नहीं जा सकता।

-प्रो. मंजरी त्रिपाठी, न्यूरोलोजी विभागाध्यक्ष, एम्स, नई दिल्ली

3. ॐ से ऑटोनोमिक नर्वस सिस्टम पर असर पड़ता है, गति कम हो जाती है, जिससे लोग शांति महसूस करने लगते हैं। एंग्जाईटी, डिप्रेशन और रक्तचाप ठीक हो जाते हैं।

-डॉ. अनूप मिश्रा, पूर्व विभागाध्यक्ष, मेडीसिन, एम्स, नई दिल्ली

4. हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ. हर्बर्ट बेसन तो भारत के इस ॐ मंत्र से इतने प्रभावित हैं कि पिछले बीस वर्षों से इस थैरेपी के प्रचार-प्रसार में लगे हुए हैं। उन्होंने 1970 में भारतीय योग शास्त्र की अनेक पुस्तकों का अध्ययन किया और इस के प्रभाव को शरीर के विविध अवयवों तथा चेतन अचेतन मन पर पड़ने का अवलोकन करके दंग रह गये। डॉ. हर्बर्ट ने 'टैक्नीक ऑफ़ माईड एण्ड बॉडी' नामक पुस्तक लिखी तथा ओमकार मंत्र की थैरिपी को व्यावहारिक दृष्टि से सहज और उपयोगी बनाने के लिए बोस्टन के डीकोनेस अस्पताल में इसके परीक्षण आरंभ करवाये जो अत्यन्त सफल रहे। बन्ध्यत्व से पीड़ित महिलाओं की सभी दवाइयाँ बन्द कराकर ओमकार मंत्र का जाप कराया जिससे 40 प्रतिशत महिलाएँ गर्भवती हो गईं जो एक चमत्कार था।

5. 'साइंस' पत्रिका के अनुसार एक शोध दल ने 7 सालों तक ओम के प्रभावों का सूक्ष्म अध्ययन किया। शोध दल के प्रमुख जे. मॉर्गन के अनुसार ॐ के उच्चारण से पेट, सीने और मस्तिष्क में हुए कंपन से शरीर की मृत कोशिकाओं को नया जीवन मिलता है और नई कोशिकाओं का निर्माण होता है। प्रो. मॉर्गन ने अपना प्रयोग 4500 मानसिक और हृदय रोगियों पर किया जिनमें 2500 पुरुष एवं 2000 महिलाएं थीं। इनमें से कई लोग तो रोग की अन्तिम स्थिति तक पहुंच चुके थे। धीरे-धीरे अधिकांश दवाइयाँ बन्द कराकर रोज़ एक घण्टा योग्य शिक्षक की देख-रेख में जाप करवाया गया। चार वर्ष बाद परिणाम जो आये, उससे 70 फीसदी पुरुषों और 85 फीसदी महिलाओं के रोग 90 प्रतिशत तक ठीक हो चुके थे। विदेशों में न्यूयार्क, बोस्टन, केलिफ़ोर्निया जैसे देशों में तो यह मंत्र थैरेपी विशेष रूप से लोकप्रिय हो रही है। भारतीयों को भी प्रारम्भ से ही अपनी प्राचीन इस विद्या का प्रयोग करके अपनी सेहत को स्वस्थ और स्व को नीरोग रखना चाहिए। "स्वस्थ भारत ही मजबूत भारत होगा।"

-संकलनकर्ता,  
सुमित्रा झँवर, भा.वि.प.,  
किशनगढ़ शाखा



## भारत में भोर होगी तो मीरा के भजन से

● अब्दुल जब्बार

बोला युं मुरली वाला ये सूरज की किरन से।  
भारत में भोर होगी तो मीरां के भजन से॥

त्यागे तमाम शाही चलन भोजराज के।  
गिरधर को सौंप डाले चलन लोकलाज के॥  
गोविन्द के घर रुकी जो चली राजभवन से।  
भारत में भोर होगी तो मीरां के भजन से॥

मीरां में कृष्ण-कृष्ण में मीरां समा गई।  
राधा को मीरां-मीरां को राधाजी भा गई॥  
आई बहार बृज में दिवानों के मिलन से।  
भारत में भोर होगी तो मीरां के भजन से॥

चित्तौड़ वृंदावन सा है गोकुल सा मेड़ता।  
ये स्वर्ग के है समान बसे इसमें देवता॥  
अमरीत हुआ है विष भी तपस्या की तपन से।  
भारत में भोर होगी तो मीरां के भजन से॥

पंछी भी गुनगुनाएँ भजन सुप्रभात में।  
तारों की चमक सौ गुनी पूनम की रात में।।  
सागर हवा से कह दो धरा और गगन से।  
भास्त में भोर होगी तो मीरां के भजन से।।

अनुराधा पुष्प लाई प्रभु जी चरण में लो।  
मीरां के गीत गाऊँ प्रभु जी शरण में लो।।  
हे नाथ आओ पंथ बुहारूँ मैं नयन से।  
भास्त में भोर होगी तो मीरां के भजन से।।

“-नूर निकेतन”, कुम्भा नगर बाजार, चित्तौड़गढ़ (राज.)

(लेखक चित्तौड़गढ़ शाखा के सदस्य हैं और कवि भी जिनके मधुर  
कण्ठ में सरस्वती बसती है। हाल में वह हज करके आए हैं।-सम्पादक)

## PRAYER

I know not by what methods rare.  
But this I know-God answers prayer.  
I know not when He sends the word.  
That tells us fervent prayer is heard.  
I know it cometh soon or late.  
Therefore we need to pray and wait.  
I know not if the blessing sought.  
Will come in just the way I thought.  
I leave my prayers with Him alone.  
Whose will is wiser than my own.

-Anonymous

## Ahimsa and Hinduism

● A.P.N. Pankaj

Ahimsa, as is generally understood, means non-violence, non-injury, or harmlessness.

While the prefix 'a' conveys negation, the term 'himsa' is derived from the verbal root 'hims' which is itself obtained from the verbal root 'han' to kill. Scholars of Sankrit would appreciate that being the desiderative from (*sannanta*) of *han*, *hims* is an expression of intent or motive or desire. Thus *himsa* happens even when there is an intent or desire to harm, hurt, injure, or violate. Ahimsa, therefore, means abstention from violence, not just physically, but also mentally and verbally.

### Vedas, Puranas, Mahabharat

A question is often asked as to the stand taken by the Vedas on the subject of ahimsa, since they are the first, and final authority on Hinduism. There is a whole range of scholars, including some of the great orthodox acharyas who argue that many Vedic yajnas could not be performed without animal sacrifice. To support this view, several mantras are quoted by them. It is even suggested that sacrificial offering of animals was an integral part of Vedic yajnas and consequently the term '*bali*' has come to mean animal or even human sacrifice in ritual settings.

There is another school of thought which strongly refutes this view. Swami Ramakrishnanada (Shashi Maharaj) says, 'Sometimes in the past the sacrificial priests and performers of yajnas fell victims to sense-indulgence. The responsibility of carrying on the yajyas being in their

hands, they invented, in order to surfeit their stomachs and indulge their senses, various violent sacrifices marked by use of wine and flesh and propagated them as sanctioned by the Vedas. '*Ma himsyad sarvabhutani*' do not injure any being' is a general dictum associated with the Vedas. The Mahabharata declares ahimsa as the highest dharma (*ahimsa paramo dharmah*), explicitly forbidding killing or violence, and there are several mantras to that effect. In a Vedic funeral hymn, the rishi says: 'I send to a distance the fire that consumes flesh. Carrying the burden of sin, may it go to the house of Yama (death). But let this other fire Jatavedas carry oblation to the gods, for he is well acquainted with all the them. This may actually underline, a more general attitude of ahimsa in the context of yajnas.

### Manusmriti, Gita, Ramayana

In the Manu smriti, an important and cotroversial Dharmashastra, there are several verses which lay emphasis on ahimsa. At the same time, there are statements that hold violence not contrary to vedic injunctions as *himsa na bhavati*; the violence sanctioned by the vedas is no violence. There are also passages which clearly support meat-eating, hunting, and killing. According to the advocates of ahimsa, all such passages are subsequent interpolations. It is also generally believed that Manusmriti is not authored by Manu himself but by someone who, considering Manu to be the ultimate authority, has cited the views of various predecessors and contemporaries of Manu and then established Manu as the final word in each case. From the view point of ahimsa, however, the following passages are worth noting:

'Ahimsa, truth, non-stealing, purity, and control over senses-these Manu says, are the common dharmas for the four varnas, in brief'.

The Bhagavadgita, the crest-jewel of Hindu dharma, commends ahimsa as one of the most important attributes

of sadhana. In his commentary on the Gita, Sri Ramanujacharya defines ahimsa as '*paradubkhabetutvam*; not being the cause of misery for other', and '*vanmanabkayaib parapidarabi tatvam*; not causing pain to others through one's speech, thought, or action. In describing the distinction between jnana (knowledge) and ajnana (ignorance), Sri Krishna counts ahimsa as one of the characteristics of jnana. He also mentions it as one of the divine traits, daivi-sampad.

The birth of the Ramayana-the first great epic in Sanskrit, the adi-kavya-followed the heartrending killing of one of pair of curlews by a hunter. Witnessing this, Valmiki's heart melted with out of his *shoka* Ramayana was subsequent Rama saga in Indian and foreign number is legion, ahimsa and great virtues. the great devotee the foremost poets, has, in fact, as the highest dharma: '*Parmadharmah shruti-bidita ahimsa*'.

<p><b>It would, however, be utter naivet to believe that non-violence is an absolute virtue in Hinduism and that no exception to it are entertained.</b></p>	<p>compassion and (grief) the born. The narrators of the Sanskrit and other languages, whose have also extolled compassion as Goswami Tulsidas, of Sri Rama and among Hindi spoken of ahimsa</p>
--	--

### Ahimsa and Violence

It would, however, be utter naivety to believe that non-violence is an absolute virtue in Hinduism and that no exception to it are entertained. While for those following the path of spirituality or bhakti, ahimsa is of paramount importance, and that same can perhaps be said of those whose field of activity is learning, teaching, and guiding people on the path of righteousness. But there are others, soldiers for example for whom himsa becomes dharma for protecting the weak, the helpless, and those seeking refuge

with them. It has been said that by the killing of a bandit many lives can be saved, that killing cannot be considered adharmā. In rousing tones, Krishna tells Arjuna to 'stand up as there is no greater good for a kshatriya than a battle enjoined by duty'.

In the Vedic pantheon, while Indra, 'the thunder god', is the conqueror of *Viritra*, the obstructor, Agni, 'the son of strength', is a mighty benefactor of his worshippers but consumes their enemies like dry bushes, and Varuna, 'the moral governor' severely punishes those who cause infringement of his ordinances, even as he is gracious to the penitent. All major Hindu gods and goddesses-with the possible exception of Brahma and Saraswati, who represent brahmana-dharma-carry lethal weapons to strike down demons and wrongdoer.

It is significant that of all the ten divine incarnations of Vishnu, only Vamana and Budha do not carry weapons or exercise physical or military strength. In order to annihilate adharmā and re-establish dharma, each of the others has to exercise a physical influence or resort to violence, and in so doing, they only earn the gratitude, love, and devotion of their long-suffering devotees.

In all this, the message conveyed is that while ahimsa is a great virtue, it is circumscribed-like practically all other virtues are-by the contexts of time, place, occasion, and circumstances. Also, as Mahatma Gandhi has pointed out, it can only be practised by the strong. Weak-willed, weak-kneed, and weak-hearted persons cannot, and should not, swear by ahimsa. Lamenting at the plight of the Hindus, Swami Vivekananda exhorted them to shed their slumber, wake up, and stand up as men. He used to say that in Hindu society *tamas* (indolence) was masquerading as *sattva* (virtue), and needed to be replaced with *rajas* (vigour) so that the dormant potential and power of this nation could be harnessed and India could claim her rightful place as a

word-leader, *vishva-guru*.

It has been said that there is no such thing as absolute ahimsa. It is not possible even for the most conscientious monk to practise total ahimsa. In order to live, one has perforce to destroy life, howsoever unwillingly or remorsefully. What is important to remember and to practise is purity of heart, equality of vision, *samadrishiti* with respect to all beings, and kindness and compassion for all those who are depressed, deprived, and destitute. Ahimsa, as Swamiji emphasizes, is absence of jealousy, not cherishing even a thought to hurt.

The Gita has the final word. If there is no ego attached, if the intellect is not clouded, and if a job is done as duty without mentally getting involved in its outcome, then 'he does not kill, nor does he become bonded (by his action)-even by killing these creatures. A very tall order, indeed. But so it is.

## HINDUTVA

In a judgment the Indian Supreme Court ruled that "no precise meaning can be ascribed to the terms 'Hindu', 'Hindutva' and 'Hinduism'; and no meaning in the abstract can confine it to the narrow limits of religion alone, excluding the content of Indian culture and heritage." The Supreme Court also ruled that "Ordinarily, Hindutva is understood as a way of life or a state of mind and is not to be equated with or understood as religious Hindu fundamentalism. A Hindu may embrace a non Hindu religion without ceasing to be a Hindu and since the Hindu is disposed to think synthetically and to regard other forms of worship, strange gods and divergent doctrines as inadequate rather than wrong or objectionable, he tends to believe that the highest divine powers complement each other for the well-being of the world and mankind".

## SELF-REALISATION

● Karan Singh

In Vedanta, which is the crest jewel of Hindu philosophy, the highest ideal is Self-realisation. This involves joining the spark of divinity within us, the *atman*, with the divinity that pervades the entire universe, the *Brahmn*. There are many methodologies for achieving this, classed under the generic term yoga, a word from the same root as the English word yoke, and involves joining the atman and the Brahmn or, in Semitic terms, God Immanent and God Transcendent.

There are four main paths of yoga — jnana yoga, the way of wisdom; bhakti yoga, the way of devotion; karma yoga, the way of dedicated work and raja yoga, the way of psycho-spiritual practices. While there are hundreds of different paths to the divine, the Rig Veda says: "The truth is one, the wise call it by many names". The Upanishads in particular are the pre-eminent structures in Hinduism because they contain illuminating expressions of multifaceted truths by realised souls, the rishis. These verses are full of ecstatic glimpses into the divine, about Self-realisation.

One short piece, the Wisdom of Shandilya, from the Chandogya Upanishad brings out the essence of Self-realisation: "This universe comes forth from Brahmn and will return to Brahmn. Verily, all is Brahmn". It goes on to say: "A person is what his deep desire is. It is our deepest desire in this life that shapes the life to come. So let us direct our deepest desires to realise the Self. "The Self, that can be realised by the pure in heart, is life,

light, space, gives rise to all works, desires, odours and all tastes, is beyond words, is joy abiding. This is the Self dwelling in my heart."

"Smaller than a grain of rice, smaller than a grain of barley, smaller than a mustard seed, smaller than a grain of millet, smaller even than the kernel of a grain of a millet is the Self. This is the Self dwelling in my heart, greater than the earth, greater than the sky, greater than all the worlds. This Self that gives rise to all works, desires, odours, and all tastes, pervades the universe, is beyond words, is joy abiding, is ever present in my heart, is Brahmn indeed. To him I shall attain when my ego dies." So said Shandilya.

As the Self resides in all beings, there is really no scope in Vedanta for discrimination on the basis of birthplace, religion, caste, class, gender or economic status. True, such discrimination based on an inequitable caste hierarchy has been part of Hindu society for centuries, but all Hindu reformers and spiritual leaders have roundly condemned such restrictive practice. Whether it was Raja Rammohan Roy in Bengal, Ranade and Bhandarkar in Maharashtra, or Swami Dayananda Saraswati in Punjab, they all sought to remove the restrictive aspects of Hindu society to return to the principles of Vedanta.

Vivekananda and his brother monks, Ramana Maharshi and Aurobindo had no room in their soaring philosophies for the ridiculous taboos based on caste discrimination. Indeed, in the global society towards which we are hurtling astride the irreversible arrow of time, what is needed is an inclusive philosophy that cuts across all the artificial barriers that divide human beings and prevent them from becoming what the Vedanta calls the world as family — "*Vasudhaiva Kutumbakam*".

**-The writer is the Chairman of the Indian Council for Cultural Relations. - Editor**

# हिन्दुत्व एवं जैन धर्म

## ● डॉ. मधु पोद्दार

समूचे विश्व में भारतवर्ष ही अनेकता में एकता की ऐसी मिसाल है जहाँ विभिन्न धर्मों, जातियों, पंथों, भाषाओं, रंग-रूपों संस्कृतियों, वेशभूषाओं व मान्यताओं के लोग एक ही राष्ट्र की अवधारणा के साथ रहते हैं। इसका मूल कारण है भारत के अनादि व प्राचीन सनातन धर्म में सर्वधर्म सद्भाव व सभी को आत्मसात करने की भावना का समावेश होना। तभी तो हमने बाहर से आए हुए इस्लाम, पारसी, ईसाई या अन्य मज़हबों को भी पूर्ण स्वतन्त्रता देकर उन्हें फलने-फूलने का अवसर दिया। **धर्म का मूल अर्थ है जो धारण किया जा सके, अपरिवर्तनशील हो, सम्पूर्ण सत्य हो, विकास में हितकारी हो, सभी को आत्मसात् कर सके व आत्मकल्याण का मार्ग दिखाए।** परन्तु समय के साथ परिस्थिति व श जब मज़हब व धर्म का गलत सहारा लेकर या बाहरी मज़हबों के दुष्प्रभाव में आकर समाज में कुरीतियों ने प्रवेश कर लिया तब इन कुरीतियों को दूर करने के उद्देश्य से, संतों व गुरुओं ने विभिन्न पंथ बनाए। अत्यधिक आडम्बरवाद व अंधविश्वास के विरोध में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना की। जब हिन्दू समाज अत्यधिक कायर होकर मुगलों के अत्याचार सह रहा था तो गुरु नानक देव ने सिख पंथ की स्थापना की। हालाँकि सभी पंथों का लक्ष्य एक ही था, भक्ति या ज्ञान मार्ग द्वारा मोक्ष पाना व सभी सनातन धर्म को ही मानते थे पर पाश्चात्य संस्कृति व अँग्रेजी शिक्षा के दुष्प्रभाव में हमारे बुद्धिजीवियों, नेताओं व इतिहासकारों ने इन पंथों को भी अलग-अलग धर्म प्रचारित करके समाज में वैमनस्य पैदा कर दिया। यहाँ तक कि जैन मत जो सदियों से, भगवान ऋषभदेव के समय से, ज्ञान-मार्ग द्वारा मोक्ष प्राप्ति का साधन था, को भी अलग धर्म एवं महावीर स्वामी जी के द्वारा संस्थापित धर्म कहना शुरू कर दिया। महावीर स्वामी जैन धर्म के संस्थापक नहीं थे बल्कि वे 25वें तीर्थकर (प्रचारक) हुए हैं। वास्तव

में हिन्दू धर्म (प्राचीन सनातन धर्म) का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है जो भक्ति-मार्ग या ज्ञान-मार्ग से प्राप्त हो सकता है। जैन धर्म में ज्ञान-मार्ग को प्रमुखता दी गई है और वह भी संन्यास व तपस्य द्वारा। जैन धर्म का प्रारम्भ भगवान ऋषभदेव से माना जाता है जो जैन कथाओं के अनुसार वैवस्वत मनु के इक्ष्वाकु वंश में हुए जबकि भागवत पुराण के अनुसार स्वयंभु मनु (सृष्टि के आदिकाल में) के दो पुत्र उत्तानपाद व प्रियव्रत हुए, जिनमें प्रियव्रत के वंश में भगवान ने ही ऋषभदेव के रूप में नाभिदेव के यहाँ जन्म लिया। बाद में भगवान ऋषभदेव को ज्ञान मिला। वे उस ज्ञान को पाकर संन्यासी होकर तपस्या करने चले गए व तभी दिगम्बर होकर पागलों की-सी अवस्था में पहुँचे व तीर्थकर कहलाए और बाद में उन्हें मोक्ष मिला। तभी से जैन धर्म का प्रारम्भ हुआ। उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव हुए जिन्हें भक्ति-मार्ग से मोक्ष मिला। भगवान ऋषभदेव के बाद 22 तीर्थकर और हुए। अन्तिम व चौबीसवें तीर्थकर भगवान महावीर हुए। अतः जैन धर्म कोई अलग धर्म नहीं है, इसकी मान्यताएँ परम्पराएँ, रीति-रिवाज, त्यौहार, दान, तप, देव-दर्शन, जन्म-पुनर्जन्म की मान्यताएँ सभी सनातन हिन्दू धर्म की हैं। पूजा-पद्धति में अवश्य अन्तर है।

जैन (जिन) यानि जिनेन्द्र का उपासक व जैन धर्म यानि जिनेन्द्र द्वारा प्रतिपादित धर्म, जिनेन्द्र जो अपनी पाँचों इन्द्रियों व चारों कषायों (क्रोध, मान, माया, व लोभ) जो आत्मा को कष्ट पहुँचाते हैं, पर विजय प्राप्त करके कैवल्य ज्ञान पा ले। तीर्थकर यानि जैन धर्म के प्रचारक, जो मनुष्यों व देवों द्वारा पूजा जाए, स्वयं संसार सागर से तरे व औरों को पार लगाए, जिसमें 5 कल्याणक (गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान व मोक्ष) के समय विशेष घटनाएँ हों। जैन धर्म में श्वेताम्बर व दिगम्बर दोनों ही श्रेणियाँ हैं। श्वेताम्बर संत वस्त्र धारण करते हैं, ग्रासाहारी हैं जबकि दिगम्बर पद्धति में मुनि कोई वस्त्र धारण नहीं करते, दोनों हाथों से खड़े होकर भोजन करते हैं व केश लोचन, दातून व स्नान न करना, भूमि पर शयन करना इत्यादि का पालन करने वाले होते हैं। जैन धर्म में साधु के पाँच महाव्रत होते हैं अहिंसा, सत्य, अचौर्य (कोई वस्तु बिना दिए न लेना), ब्रह्मचर्य (मन, वचन व कर्म से स्त्री मात्र का त्याग) व अपरिग्रह (14 अंतरंग व 10 बहिरंगों का पूर्ण त्याग) जैसे प्रस्वेद व मल-मूत्र रहित शरीर, श्वेत रक्त, सुगन्धित श्वास, अद्भुत रूप, गर्भ व जन्म के समय अद्भुत घटनाएँ इत्यादि आवश्यक हैं।



भगवान महावीर अन्तिम व 24वें तीर्थकर माने गए हैं। इनका जन्म वैशाली ज़िले के कुंड ग्राम में चैत्र शुक्ल त्रयोदशी (ई. पूर्व 598.28 मार्च, सोमवार) को राजा सिद्धार्थ व रानी त्रिशला के यहाँ हुआ। इनका बचपन का नाम वर्धमान था। बाद में वे महावीर कहलाए। इन्हें आदि तीर्थकर ऋषभदेव का पौत्र माना गया है जो इस चतुर्थकाल में अनेक योनियों में जन्म लेते हुए अन्त में महावीर के रूप में आए। ये बचपन से ही वीर व ज्ञानी थे। 30 वर्ष की आयु में इन्होंने 23वें तीर्थकर पार्श्वनाथ का अनुसरण करते हुए वैराग्य का जीवन जीने का संकल्प लिया। फिर नागखंड नामक उपवन में, स्फटिक शिला पर उत्तरमुखी होकर दिगम्बर दशा धारण कर मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी के सांध्यकाल में चैतन्य ध्यान किया व साढ़े बारह वर्ष तक मौन रहकर आत्मसाधना की। इसके बाद विचरण करके अहिंसा धर्म का प्रचार किया। कार्तिक कृष्ण अमावस्या को इन्हें निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त हुआ, इसीलिए दीपावली को इनका निर्वाण दिवस मनाया जाता है।

जैन धर्म में अनेक पर्व मनाए जाते हैं जैसे दीपावली, रक्षाबन्धन इत्यादि, परन्तु पर्युषण पर्व (जिसमें विशेष धार्मिक कार्य हो व आत्मशांति मिले) सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इनमें दशलक्षण पर्व विशेष है। जैन मान्यता के अनुसार 49 दिन की प्रलय के बाद इन्हीं 10 धर्मों के उपदेश से जीवों को शान्ति मिली थी। यह पर्व दिगम्बर व श्वेताम्बर, दोनों समाजों द्वारा, भाद्रपद शुक्ल पंचमी से अनन्त चतुर्दशी तक मनाया जाता है। इसमें दस धर्मों का पालन किया जाता है जो इस प्रकार हैं-1 क्षमा, 2 सत्य, 3 तप (कर्मों को तपाकर नष्ट करना), 4 संयम (एकाग्रता, नियन्त्रण), 5 शौच (पवित्रता, शुद्धता), 6 मार्दव (अभिमान का नाश-नम्रता), 7 आर्जन (ईमानदारी), 8 त्याग (सांसारिक सम्पदाओं को परित्याग), 9 ब्रह्मचर्य (संयम, स्त्री-त्याग), 10 अकिञ्जन्य (इच्छाओं पर रोक, परिग्रह का न होना, राग व माया रहित)। सनातनधर्मों भी इस समय को संन्यासियों के चार्तुमास के रूप में मनाते हैं।

प्राचीनकाल में किसी भी वर्ण के लोग जैन धर्म अपना सकते थे, लेकिन अब धीरे-धीरे संकुचित होकर यह धर्म सिर्फ वैश्यों तक ही सीमित हो गया है। जैन धर्म के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य के समक्ष आचार्य भद्रबाहु ने यह भविष्यवाणी कर दी थी कि पंचमकाल में मुनियों में फूट होगी, ब्राह्मण व क्षत्रिय जैन व्रत नहीं लेंगे, सिर्फ वैश्य ही लेंगे। राजा व मंत्री अन्यायी व

दयारहित हो जाएँगे। लक्ष्मी नीच कुलों में जाएगी। अंगधारी मुनि नहीं होंगे। 12 वर्ष तक अकाल पड़ेगा व अयोग्यों का राज्य होगा। जैन धर्म दक्षिण की तरफ चला जाएगा। आज ये सारी भविष्यवाणियाँ सत्य साबित होती हुई प्रतीत हो रही हैं। इसी तरह की भविष्यवाणियाँ भागवतपुराण में कलियुग के लिए की गई हैं। वे भी शतप्रतिशत सही साबित हो रही हैं।

जैन धर्म का पूर्ण अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि यह वही पुराना सनातन (आजकल हिन्दू) धर्म है जिसका लक्ष्य है निर्वाण प्राप्ति, ज्ञान-मार्ग द्वारा। वैसे भी महाभारत के अनुसार धर्म एक शाश्वत सत्य है चाहे इसे कोई भी नाम दिया जाए, धारण करने से लोग इसे धर्म कहते हैं। धर्म का वाह्य रूप बदल सकता है पर आन्तरिक तत्व वही है। आज जिसे हम धर्म कहते हैं वह सम्प्रदाय है, पंथ है, मत है जबकि धर्म तो दैनिक क्रियाकलापों में एक नैतिक हस्तक्षेप है। धर्म एक सागर है जिसमें विभिन्न समुदाय या पंथ रूपी नदियाँ हैं। धर्म, ईश्वर द्वारा बताया गया सनातन व शाश्वत है इसकी कोई संस्थापना नहीं करता। अतः जैन धर्म किसी-न-किसी के द्वारा स्थापित पंथ हैं, धर्म नहीं। इस्लाम व ईसाई भी व्यक्ति विशेष के नाम पर शुरू हुए मज़हब हैं, धर्म नहीं।

अतः मानव को धर्म, पंथ और मज़हब में भेद जानते हुए तथा सनातन धर्म में पूर्ण आस्था रखते हुए जीवन व्यतीत करना चाहिए। आजकल पंथों पर आधारित तथाकथित सैक्यूलर अर्थात् धर्मरहित जीवन, अमर्यादित नदियों के समान है जो सीमाओं को तोड़कर आसपास का विनाश ही कर सकती हैं, मानव जाति का कल्याण नहीं।

**-पोद्दार नर्सिंग होम, पटेल नगर-1, गाज़ियाबाद (उ० प्र०)**

मुझको ऐसे धर्मावलम्बी होने का गौरव प्राप्त है, जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सब धर्मों को मान्यता प्रदान करने की शिक्षा दी है। हम लोग सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते, वरन् सब धर्मों को सच्चा मानकर ग्रहण करते हैं।

**-स्वामी विवेकानन्द**

## हिन्दू धर्म के पुनर्जागरण के पुरोधा

स्वामी विवेकोनन्द, महर्षि अरविन्द घोष,  
वीर सावरकर एवं महर्षि दयानन्द

### ● आर. के. श्रीवास्तव

मानव जाति के भाग्य की संरचना करने वाली विभिन्न शक्तियों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण शक्ति है धर्म। सभी सामाजिक संगठनों को प्रेरणा प्रदान करने वाली भी यही शक्ति है। धर्म की विचारधारा के मूल का पता लगाने के अनेकों प्रयास किये गये। प्राचीन काल से आज तक धर्म के जितने स्वरूप अस्तित्व में आये उन सभी में एक बात अवश्य पाई जाती है और वह है अलौकिकता का होना।

वेद हिन्दू धर्म का आधार हैं। ये विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं एवं इनके द्वारा दिया ज्ञान शाश्वत एवं सार्वभौमिक है।

गत पाँच हजार वर्षों में वेदों में वर्णित ईश्वरीय सिद्धांतों का दृढ़ता व सत्यता से पालन नहीं किया गया। कुछ लोगों ने अपने इंद्रिय सुख एवं स्वार्थ के वशीभूत होकर दूसरे मनुष्यों, प्राणियों एवं प्रकृति की अन्य वस्तुओं को हानि पहुँचाई जिसके परिणाम स्वरूप समाज में बुराइयाँ पैदा होना आरम्भ हो गया। इसके परिणाम से वे स्वयम् भी नहीं बच सके। वेदों के कर्म के आधार पर वर्ण व्यवस्था को जन्म के आधार पर मानना प्रारम्भ कर दिया गया, परिणाम स्वरूप ऊँच-नीच की भावना का जन्म हुआ।

गीता में कहा गया है

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अम्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

अर्थात् जब-जब धर्म पर संकट आता है, ईश्वर उसकी पुनः स्थापना के लिए जन्म धारण करते हैं। इस प्रकार जब भी समाज में बुराइयाँ बढ़ीं ईश्वर

ने किसी न किसी रूप में जन्म धारण कर उन्हें दूर करके धर्म की स्थापना की।

यदि इस प्रकार के धर्म की स्थापना को हम नवजागरण की संज्ञा दें तो प्रथम नवजागरण ऋग्वैदिक काल था। उपनिषद् काल में दूसरा नवजागरण आया जब कर्म के स्थान पर जाति जन्म आधारित हो गई। तब जैन व बौद्ध काल में तीसरा पुनर्जागरण आया। चौथा नवजागरण शंकराचार्य के नेतृत्व में व उसके बाद विदेशी इस्लामी हमलों से आहत भारतीय समाज के बीच भक्ति प्रवाह के रूप में पाँचवा नवजागरण प्रारम्भ हुआ। स्थिति में फिर भी कोई महत्वपूर्ण सुधार नहीं हुआ तथा अंग्रेजों के भारत में आने के पश्चात् भारतीय संस्कृति, भाषा एवं हिन्दू धर्म पर आघात बढ़ने लगे। अतः उन्नीसवीं शताब्दी में छठवाँ पुनर्जागरण आया। इस युग में मनीषियों ने हिन्दू धर्म के हास के मूल कारण की खोज आरम्भ की। हिन्दू धर्म के इन पुरोधाओं में स्वामी विवेकानन्द, अरविन्द घोष, श्री वी. डी. सावरकर व महर्षि दयानन्द सरस्वती के नाम उल्लेखनीय हैं।

स्वामी विवेकानन्द का जन्म 12 जनवरी 1863 एवं देहावसान 4 जुलाई 1902 में हुआ। इस प्रकार उनकी कार्य अवधि सबसे कम रही किन्तु उनका योगदान शायद सबसे अधिक रहा। उनके गुरु श्री राम कृष्ण परमहंस थे जिनके नाम से उन्होंने राम कृष्ण मिशन की स्थापना की। वे तत्कालीन समाज सुधार के उपायों से संतुष्ट नहीं थे तथा हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान के लिए एक नये मार्ग की खोज करना चाहते थे। स्वामी जी के समक्ष तीन विकल्प थे। पहला राजा राम मोहन राय के ब्रह्म समाज का सदस्य होकर समाज सुधार का कार्य करना तथा दूसरा सभी सांसारिक बन्धनों को त्याग करके हिमालय में जाकर तपस्या करके मुक्ति प्राप्त करना एवं तीसरा समाज सेवा के मार्ग का अनुसरण करके लोगों के हृदय में भारतीय समाज को नवजीवन प्रदान करने हेतु जागृति पैदा करना। सन् 1890 में वे हिमालय में भ्रमण भी करते रहे। अन्त में अपने गुरु श्री राम कृष्ण परमहंस की प्रेरणा से उन्होंने तीसरे विकल्प को अपनाया एवं लोगों को निर्धन तथा भूखे भिखारी में भी नारायण के दर्शन करा उनकी सेवा करने की प्रेरणा दी।

स्वामी विवेकानन्द का मानना था कि वैदिक दर्शन ही भारत का प्राचीनतम दर्शन है। इसके अनुसार ईश्वर ही सत्य एवं शाश्वत है तथा संसार

मिथ्या है। संसार के आवागमन से मुक्ति पाकर उसी ईश्वर में समाहित होना ही प्रत्येक मानव का उद्देश्य है। यह सही ज्ञान प्राप्त करने पर ही सम्भव है। इसका मार्ग संसार को त्याग करके नहीं वरन् संसार में रहकर अपने कर्तव्यों का निःस्वार्थ पालन करते हुए दूसरों की सेवा करने में है। उन्होंने सार्वभौमिक सहिष्णुता का उपदेश दिया। उन्होंने भारतवासियों के अन्दर आत्मविश्वास जगाया। उन्हें शक्तिशाली बनकर वेदों के सिद्धान्तों को समस्त संसार में प्रसारित करने की स्फूर्ति प्रदान की। उनके वेद दर्शन का अर्थ था सेवा, त्याग एवं स्वाधीनता। उन्होंने देशवासियों से कहा कि उन्हें अपनी संस्कृति, अपने इतिहास एवं अपने धर्म पर स्वाभिमान होना चाहिये। यही नहीं स्वामी जी ने कई वर्षों तक अमेरिका, लन्दन एवं यूरोप में भ्रमण करके विभिन्न स्थानों एवं धर्म संसदों में भाषण देकर वैदिक दर्शन की व्याख्या द्वारा संसार, माया एवं ईश्वर के स्वरूप की विवेचना करके न केवल पश्चिमी विद्वानों को आश्चर्य चकित किया वरन् उनके अन्दर वैदिक दर्शन के प्रति आस्था भी उत्पन्न की।

स्वामी विवेकानन्द जी के द्वारा आरम्भ किये गये हिन्दू धर्म के पुनर्जागरण के कार्य को श्री अरविन्द घोष ने आगे बढ़ाया। उन्होंने प्रारम्भ में 13 वर्ष इंग्लैन्ड में रहकर शिक्षा प्राप्त की। भारत आने के पश्चात् उन्होंने इतिहास तथा दर्शन शास्त्र का अध्ययन किया। इस प्रकार वे हिन्दुत्व एवं हिन्दू दर्शन के प्रामाणित व्याख्या करने वाले माने जाने लगे। उन्होंने स्वतंत्रता आन्दोलन में भी सक्रिय रूप से भाग लेकर राष्ट्र भावना को जन मानस में जगाया किन्तु हिन्दू धर्म के पुनर्जागरण के लिए उन्होंने अधिक महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने वेदों की नई व्याख्या की तथा कहा कि वेदों का वास्तविक संदेश निष्काम कर्म योग ही है। उन्होंने स्पष्ट किया कि गीता का “कर्मण्येवाधि कारस्ते मा फलेषु कदाचन” ही वेदों का निचोड़ है। वैदिक दर्शन में विज्ञान से अधिक आध्यात्म को महत्ता दी गई है। भारतीय आध्यात्मिक विकास के द्वारा ही हिन्दू धर्म के प्राचीन गौरव को प्राप्त कर सकते हैं।

इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द एवं श्री अरविन्द घोष दोनों ने वेद दर्शन की नई व्याख्या प्रस्तुत की तथा इसके सिद्धांत का पालन हिन्दू धर्म के पुनर्जागरण के लिए आवश्यक बताया। उनकी विशेषता यह रही कि इसे किसी विशेष सम्प्रदाय में सीमित न करके इसे समस्त जातियों एवं धर्मावलम्बियों में सामंजस्य उत्पन्न करने वाला बताया।

हिन्दू धर्म के पुनर्जागरण में योग देने वालों में तीसरा उल्लेखनीय नाम श्री वी.डी. सावरकर का है। उनकी भी प्रेरणा शक्ति राष्ट्रीयता रही है। वे सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के समर्थक थे। उनका मानना था कि राष्ट्रीयता का मूल तत्व अपनी अलग पहचान है तथा यह पहचान हिन्दू धर्म के कारण एक लम्बे समय की अवधि में बन पाई है। सदियों से हिन्दू सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक, भाषाई एवं ऐतिहासिक एकता के कारण संगठित रह सके हैं। सन् 1924 में हिन्दुत्व नाम से लिखी गई पुस्तक से उनके द्वारा बताये गये सिद्धांतों का पता चलता है। श्री सावरकर के अनुसार वेदों एवं रीति रिवाजों का आँख मूंद कर पालन करना उचित नहीं है। धार्मिक पुस्तकों मनुष्यों द्वारा रचित है अतः उनकी समीक्षा तर्क के आधार पर की जानी चाहिये। इन पर आँख बन्द करके विश्वास करने के कारण हिन्दू अन्ध विश्वासी तथा भाग्यवादी हो गये हैं। उन्होंने चतुर्वर्ण एवं जाति प्रथा को अवैज्ञानिक बताया तथा यह कहा कि इसी से अछूत की प्रथा का जन्म हुआ। किसी को अछूत मानना मानवता का अपमान करना है। इसे उन्होंने हिन्दू धर्म एवं समाज में गिरावट का मूल कारण बताया। उन्होंने कहा कि हिन्दुओं को विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में आगे बढ़कर अपने को शक्ति शाली बनाने की आवश्यकता है। इस प्रकार उन्होंने हिन्दुओं में समय के अनुसार एक नई स्फूर्ति जागृत करने का प्रयास किया।

इसी सदी के हिन्दू धर्म के पुनर्जागरण कर्ता के रूप में महर्षि दयानन्द सरस्वती का नाम भी अत्यन्त सम्मान पूर्वक लिया जाता है। उनका सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश है। उन्होंने हिन्दुओं में फैले अंधविश्वास कुरीतियों, मूर्तिपूजा, अवतारवाद व तीर्थाटन का विरोध किया। उन्होंने नर नारी की समानता की अलख जगाई एवं अस्पृश्यता के विरुद्ध शंखनाद किया। अन्य सम्प्रदायों द्वारा किये जा रहे धर्मान्तरण पर रोक लगाई। उन्होंने वेदों के उदात्त, विशाल एवं गम्भीर स्वरूप को प्रकट किया व आर्य समाज की स्थापना की। उन्होंने हिन्दू धर्म एवं समाज के अन्दर अपनी परम्परा के प्रति आस्था तथा संस्कृति के प्रति विश्वास जगाया।

-66/2 बी. स्टेनली रोड इलाहाबाद

# धर्म भारतीय परिप्रेक्ष्य में

● डॉ. हरीश कुमार शर्मा

‘धर्म’ शब्द इधर बड़ा विवादित हो गया है और बहुत ऊँचा सोचने वालों के लिये हेय भी। इसलिये धर्म के साथ ‘संस्कृति’ का सम्बन्ध जोड़ने से ऐसे लोगों की भृकुटि चढ़ जाना स्वाभाविक है। इसके मूल में कारण भी हमारे द्वारा धर्म का अर्थ-संकुचन कर लिया जाना है। आज धर्म का अर्थ सिर्फ पूजा-उपासना की रीतियों से जोड़ देने के कारण ही उसके प्रति यह हेय-भाव उपजा है, जबकि भारत में धर्म का अर्थ कर्तव्य-पालन अधिक लिया जाता रहा है, फिर चाहे यह कर्तव्य परिवार के प्रति हो, समाज के प्रति हो या राज्य के प्रति हो। दूसरा धर्म का बड़ा सम्बन्ध नैतिकता से है जिसका भी जुड़ाव कर्तव्य-पालन से अविच्छिन्न रूप से है। पूजा-पाठ या ईशाराधन भी प्रकारान्तर से कर्तव्य-पालन या नैतिकता का ही एक ढंग है जो जीवन के प्रति ईश्वरीय देन एवं कल्याणमय भविष्य की कामना के लिये कृतज्ञ-भाव या प्रार्थना के रूप में व्यक्त होता है। व्यक्ति से लेकर प्रकृति और कृति तक सभी, मनुष्य के इस कर्तव्य-पालन एवं नैतिकता की परिधि में समाये हैं जिसकी बृहत्तर संज्ञा धर्म है। यही कारण रहा कि यहाँ धर्म का नाम लेने में कभी भी शर्म नहीं महसूस की गयी जैसी कि आज कुछ लोगों के द्वारा और कुछ लोगों की वजह से (जो अपने द्वारा किये गये अधर्म को धर्म का नाम देते हैं) महसूस की जाती है और उन्होंने एक तरह से इसे राष्ट्रीय शर्म का विषय बना रखा है तथा उससे बचने के लिये उसे धर्मनिरपेक्षता के झक्क सफेद कपड़े से पोंछकर बीच-बीच में छुटाते रहते हैं।

धर्म के सम्बन्ध में एक रोचक बात भारतीय सन्दर्भ में यह भी है कि यहाँ धर्म के पिता होते हैं, धर्म की माता होती है, धर्म के भाई बनते हैं, धर्म की बहिन बनती है, धर्म के मित्र आदि सम्बन्ध भी बनाये जाते हैं, लेकिन धर्म के शत्रु नहीं। फलतः ‘धर्मयुद्ध’ जैसी अवधारणा भी यहाँ उस अर्थ में नहीं

रही जिस अर्थ में आज धर्म को पन्थ या सम्प्रदाय के रूप में अर्थ-संकोच कर देखा जाता है तथा ‘क्रूसेड’ या ‘जेहाद’ की बात की जाती है। यहाँ तो शास्त्रार्थ में पराजित होने पर ज्ञानी द्वारा अपनी जीभ काटने की परम्परा रही है, दूसरे की गर्दन नहीं। जिन युद्धों को ‘धर्मयुद्ध’ का नाम भी मिला है तो वहाँ सत्य-असत्य, उचित-अनुचित, नीति-अनीति, न्याय-अन्याय के द्वन्द्व में सत्य, उचित, नीति और न्याय के पक्ष में खड़े होने को धर्म कहा गया है, फिर चाहे वह युद्ध ‘रामायण’, ‘महाभारत’ का हो या कोई अन्य युद्ध। सही कहा था इकबाल ने कि ‘मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना’, लेकिन आज लोग मजहब को ही बैर रखना सिखाने के लिये तुले हुए हैं। धर्म के इसी बृहत्स्वरूप का संस्कार कहीं हमारे अन्तर्मन में गहरे पैठा हुआ है कि हमारे यहाँ आज भी बड़े-से-बड़े नास्तिक और सेक्युलर भी अपने को धर्मनिरपेक्ष कहलाने में भले ही कितने ही गौरव का अनुभव करें, पर अधर्मी कहलाना कोई अपने को पसन्द नहीं करेगा। अधर्मी कहना किसी के लिये गाली की तरह है और उसे कोई स्वीकार नहीं करेगा। यही नहीं भारत की संसद, राज्यों की विधानसभाओं, न्यायालयों एवं अन्य महत्वपूर्ण जिम्मेदारियों वाले स्थानों पर लिखे संस्कृति के ‘सत्यं वद् धर्मम् चर’, ‘यतो धर्मः ततो जयः’, ‘धर्मचक्रप्रवर्तनाम्’ जैसे सूक्ति-वाक्य भी धर्म के प्रति व्यापक भारतीय दृष्टिबोध का परिचय ही देते हैं। अब कल को यदि देश का कोई नेता या अन्य प्रभावशाली व्यक्ति उनका एक ही जीवन-पद्धति से आशय ले धर्मचक्र चलाने लग जाये या कोई दूसरा रिलीजन, पन्थ या सम्प्रदाय के अर्थ में धर्म को लेकर दूरदर्शन आकाशवाणी पर –‘राम-राम’ कहने या ‘इण्डिया’ को ‘हिन्दुस्तान’ कहने की तर्ज पर इन स्थलों से ऐसे वाक्यों को हटाने की मांग करे तो उसे क्या कहा जायेगा!

-अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, दोन्यो पोलो शासकीय महाविद्यालय  
कामकी, पो. अलांग, अरुणांचल प्रदेश

## THE HINDU CONCEPT OF TIME

The Hindu concept of time is extremely vast and divided into *yugas* and *mahayugas*. These are calculated as follows:

One human year represents one day for the divine.

60 divine days make one divine year.

12,000 divine years make one *mahayuga*.

One *mahayuga* is divided into 4 *yugas*, which are called: Krita, *trata* Dwapar and Kali

In terms of human years:

Kali Yuga = 4,32,000 years

Dwapar Yuga = 8,64,000 years (dwa means twice)

Treta Yuga = 1,296,000 years (tre means thrice)

Krita Yuga = 1,728,000 years (4 time Kali yuga)

Hence one complete *mahayuga* is equal to 4,320,000 (4.32 million) human years.

The following are considered the ruling gods in each of the four *yugas*:

Krita Yuga Sri Ranganatha

Treta Yuga Sri Rama

Dwapar Yuga Sri Krishana

Kali Yuga Sri Srinivasa

Seventy-two *mahayugas* constitute one *manvantara* (i.e. the life of man) and fourteen such *manvantaras* make one day (*kalpa*) of Brahma. This works out to 4.35 billion human years (72x14x 4.32 million).

### **Param and Param ardhham**

Brahma's whole day is 8.70 billion human years (1 day of 4.35 billion human years +1 night of 4.35 billion human years). Thirty such days make one month for Brahma (i.e.8.70x30+261 billion human years) and 12 months make one year. Brahma is supposed to live for 100 such years which works out to 313.2 trillion human years. This is called Param and half it is Param ardhham.

### **Span of time**

Time, or *kala* in Hindu philosophy, is considered in three ways/ranges. The first is cosmic or epochal time determined in terms of the life span of Brahma. The second range is Panchang time, measured in units of days and months used in determining the seasons etc. The last is horological time for measuring the duration of the day and is determined by lesser units.

Each unit of time in all three ranges is believed to have two wings and to be made up of a day and night separated by twilight periods. A unit is, therefore, made up of dawn (*usha*), twilight (*sandhya*) and night.

The *truti* (particle) is the smallest unit of duration. In modern terms it ranges anywhere between one ten thousand millionth of a second to one *kshana* (moment).

The *kshana* (moment) loosely ranges from 2/45th of a second.

The *nimesha/nimisha* (blink or twinkling of an eye), strictly the time taken for the upward or downward movement of the eyelid, is equal to four *kshans*.

The *lave* (fraction) is the duration of a completed blink (i.e., the time taken to shut and open the eyes in the act of blinking) is equal to 8 *kshanas*.

The *vipala* (fleeting) is the duration of four and a half *nimishas* or about two and a half complete blinks.



## भारतीय परम्परा में 'जल'

जगत प्रकाश गर्ग

“नदियों का जल सागर में मिलता है, वे सागर से सागर को जोड़ती हैं, सम्यक् मेघ वाष्प बनकर आकाश में छाते हैं और बरसात करते हैं” (छांदोग्य उपनिषद्)

जल के प्राकृतिक चक्र का यह संभवतः प्राचीनतम उल्लेख है। इससे सिद्ध होता है कि ई.पू. 1000 ईस्वी में भी भारतीय समाज की जल के प्रति दृष्टि सम्यक् तो थी ही, वैज्ञानिक भी थी। वेदों, विशेषकर ऋग्वेद में सिंचित खेती, नदी के बहाव, जलाशयों, कुँओं आदि का पर्याप्त उल्लेख मिलता है।

इलाहाबाद के पास श्रृंगवेरपुरा में हुई खुदाई में भी ई.पू. प्रथम शताब्दी में भारतीय जल कौशल के प्रमाण मिले हैं। यहाँ एक 250 मीटर लम्बा तालाब मिला है। इसमें गंगा के पानी को जमा किया जाता था। उस समय दूसरे तालाबों में वर्षा का जल जमा किया जाता था। रामायण के अनुसार श्रृंगवेरपुरा से ही राम ने वनवास को जाते हुए गंगा को पार किया था।

उपरोक्त विवरण से एक तथ्य स्पष्ट होता है उस समाज की 'जल संरक्षण' की समझ बहुत पैनी थी। वर्षा के पानी को रोकने के साथ-साथ बाढ़ के पानी से भी तालाब भरने की व्यवस्था उस समय तक समाज ने विकसित कर ली थी।

चन्द्रगुप्त मौर्य (ई.पू. 321-297) के समय किसान बाँध, तालाब और अन्य सिंचाई साधनों का निर्माण करने लगे थे। स्वयं चन्द्रगुप्त ने विशाल 'सुदर्शन झील' का निर्माण कराया था। इसकी देख-रेख एवं मरम्मत का सिलसिला बाद के राजाओं द्वारा चलता रहा। यह झील नौवीं सदी तक मौजूद थी।

एक अन्य हिन्दू राजा भोज (1010-1055 ई.) ने अपने समय का , बल्कि अब तक का सबसे बड़ा तालाब बनवाया। 65000 है. में बने इस 'भोपाल ताल' में 365 झरनों का पानी आकर समाता था। भोपाल ताल की महत्ता इस कहावत से समझी जा सकती है- ताल हो तो भोपाल ताल, और

सब तलैया, राजा तो रामचन्द्र, और सब रजैया।

भोपाल का वर्तमान तालाब उसी ताल का बचा हुआ छोटा सा हिस्सा है। भोपाल ताल 15वीं सदी में मालवा के सुल्तान होशंगाशाह द्वारा सामरिक कारणों से तुड़वा दिया गया था।

पुरातत्त्व और इतिहास के तथ्यों को छोड़ भी दें तो हमें हिन्दू समाज की रग-रग में, देश के कण-कण में जल के प्रति, नदियों, तालाबों, कुँओं के प्रति श्रद्धा का, कृतज्ञता का भाव स्पष्ट दिखाई देता है। हिन्दू तीर्थों को ही लें। तीर्थ यात्रा शुरु से ही हिन्दू समाज में पुण्य अर्जित करने का बड़ा ज़रिया माना गया है। कम लोगों को मालूम होगा कि 'तीर्थ' शब्द में ही जल मौजूद है। 'तीर' 'नीर' और 'दीर' तीनों का अर्थ ही 'जल' है। तीर से तराई, तरल और तर शब्द बने हैं। 'यमुना तीरे' 'गंगा तीरे' में भी तीर के दर्शन होते हैं। 'तीरे' अर्थात् जल का किनारा या तट। 'तीर्थ' शब्द का मूल अर्थ है 'नाव से उतरने का स्थान'।

भारतीय भूमि, जनजीवन एवं, परम्पराओं पर 'गंगा' का गहरा प्रभाव है। गंगा पानी देती है, यह तो सामान्य बात है। दुनिया को हर नदी पानी देती है। लेकिन किस देश में कौन सी नदी 'माँ' 'मैया' कहकर पुकारी जाती है। दुनिया की किस नदी में नहाते नहाते 'जय हो गंगे मैया' जैसे कृतज्ञता भरे स्वर सुनाई देते हैं। नहाते वक्त तो छोड़िए, गंगा यमुना को रेल से भी पार कर रहे हो तो पुल आते ही 'जय हो गंगे मैया' की मधुर ध्वनि आज भी सुनाई दे जाती है।

जहाँ से गंगा यमुना का उद्गम होता है, वह हमारे तीर्थ 'गंगोत्री', यमुनोत्री इत्यादि से गंगा पहाड़ों से मैदान में प्रवेश करती है, हरिद्वार 'हमारा तीर्थ', गंगा यमुना का जहाँ संगम होता है 'इलाहाबाद' हमारा तीर्थ और अंत में गंगा सागर में विलीन होती है 'गंगासागर' हमारा तीर्थ है। 'श्रीगंगानगर' नाम का शहर राजस्थान में है। देश के दूर दक्षिण तमिलनाडु में हमारे वित्त मंत्री चिदंबरम् जी के चुनाव क्षेत्र का नाम है 'शिव गंगा'। राष्ट्रीय एकता का मज़बूत आधार है 'गंगा'।

परिवार में बच्चों के जन्म लेने पर कुँओं पूजन की परम्परा का क्या अर्थ है? संसार में एक नए प्राणी के आने पर कुँएँ की मनुहार या कुँएँ को नमन है एवं यह, कि हे कुँएँ देवता! इस बच्चे का भी अपने जल से लालन-पालन

करना। जन्म होने पर जल को नमन और अन्तिम सांस लेते हुए मुँह में एक चम्मच गंगाजल और अन्त में अस्थि विसर्जन भी गंगा में। ऐसे जाने कितने संस्कार, कितनी परम्पराएँ हिन्दू समाज में मौजूद हैं। 'गंगा स्नान' यहाँ एक पर्व है। बिना किसी सूचना निमंत्रण के, वह भी 12 वर्ष के अन्तराल से 1 करोड़ से अधिक लोग कहाँ एकत्रित होते हैं? कुंभ दुनिया का सबसे बड़ा मेला है। बहुत बाद में शुरू हुई कांवड़ यात्रा भी 'गंगाजल' को हरिद्वार से अपने नगर, गाँव लाने का उपक्रम है। ऐसी ही कांवड़ यात्रा बिहार के बैद्यनाथ में भी होती है। नदियों से अपना काम निकाल रहा है, हमारी पानी की जरूरतें पूरी हो रही है, इसलिए पानी खींचों और मौज करो, ऐसा भाव नहीं था समाज में। नदियों की पवित्रता और स्वच्छता का भी पूरा ध्यान समाज के संस्कारों में शामिल था।

नगरों, कस्बों के नाम प्रायः शासकों या महान् विभूतियों या फिर देवी देवताओं के नाम पर रखे जाते हैं। पानी और पानी देने वाली व्यवस्थाओं के प्रति कृतज्ञता देते कि देश भर में सैकड़ों स्थानों के नाम में जल, तालाब या नदी की मौजूदगी मिलती है। एक झलक देखें - जलगाँव, जलपाईगुड़ी, जालौन, जालंधर, पानीपत, सागर, सिबसागर, महासमन्द, नदिया, बूँदी, धार, अमृतसर, जलेसर, बिनसर, नैनीताल, शुक्रताल, पालघाट, नालागढ़, शिवगंगा, यमुना नगर आदि। राजस्थान में तो हज़ारों गाँवों के नाम में 'सर' अर्थात् 'तालाब' मिलेगा।

नदी तो प्रकृति की देन है। अपने रस्ते बह रही है। ऐसा संभव नहीं है कि देश का सारा भू-भाग नदियों के प्रभाव क्षेत्र से आच्छादित हो जाये और प्रत्येक नदी में बारहों महीने पानी भी रहे। लेकिन पानी तो हर जगह, हर वक्त और हर किसी को चाहिए। भारत जैसे भिन्न संस्कृति और भिन्न भौगोलिक परिस्थितियों वाले देश में जल संग्रह के साधन भी स्थानानुसार भिन्न ही होंगे और रहे भी हैं। संख्या और प्रकार के मामले में दुनिया का कोई अकेला देश तो इनसे बराबरी कर ही नहीं सकता, शायद सारे देश मिलकर भी न कर सकें। राजस्थान देश का सबसे सूखा प्रदेश माना जाता है। पश्चिमी राजस्थान में तो मात्र 100 मि.मी.पानी पड़ता है। लेकिन पानी सहेजने में सबसे ज़्यादा साधन यहीं मिलेंगे। राजस्थान में यह समृद्धि पानी सहेजने के अनगिनत साधनों की बदौलत संभव हुई है। कुछ साधनों के नाम देखें - कुंड, सर, बावड़ी,

आंके, बेरी, कुई, डाकेरियन, टोबा, कुंडी, ढालरा, नाड़ी, खड़ीन आदि।

पूरे देश पर नज़र डालें तो तालाब और कुएं तो देश में हर कहीं मिलते हैं। क्षेत्र विशेष की जरूरतों के अनुसार अनगिनत अन्य व्यवस्थाएँ भी देश भर में सदियों से सफलतापूर्वक काम कर रही हैं। जैसे - जोहड़, झील, कुहल, बंधा, नहर, नाले, सुरंगम, एनीकट, विरड़ा, कुल, गूल, आहर, पइन, कोलवा, खोला, खोली, चाल, रहट, चडस, चुही, छप्परी, चँवर, जोर, डोंग, दोन, फड़ कपाट, दीधी, सोने, हल्ला, रपट आदि।

जो मानव मात्र के लिए बल्कि जीव मात्र के लिए कल्याणकारी है, उसे धार्मिक नियमों के रूप में समाज में प्रसारित करना, हिन्दू धर्म की अनूठी विशेषता रही है। इसी के चलते पानी से जुड़े लोकाचार राजस्थान जैसे मरु प्रदेश के साथ ही जल समृद्ध गंगा के मैदानी क्षेत्रों तक में समान रूप से मिलते हैं। भारतीय समाज का जल से कैसा रिश्ता रहा है, उसकी कुछ झलक इस लेख में आ पाई है। इस रिश्ते की गहराई में और डूबने के लिए मैं श्री अनुपम मिश्रा की पुस्तक 'आज भी खरे हैं तालाब' के कुछ अंश देकर लेख का समापन कर रहा हूँ।

'लोक धर्म सुभाव से जुड़ जाता है। प्रसंग सुख का हो तो तालाब बन जाएगा। प्रसंग दुख का भी हो तो तालाब बन जाएगा जैसेलमेर, बाड़मेर में साधन कम हों, पूरा तालाब बनने की गुंजाइश न हो तो उन सीमित साधनों का उपयोग पहले से बने किसी तालाब की पाल पर मिट्टी डालने, छोटी मोटी मरम्मत करने में होता था। मृत्यु किस परिवार में नहीं आती? हर परिवार अपने दुःखद प्रसंग को समाज के सुख के लिए तालाब से जोड़ देता था।'

'पानी का प्रबन्ध, उसकी चिन्ता हमारे समाज के कर्तव्य-बोध के विशाल सागर की एक बूंद थी। सागर और बूंद एक दूसरे से जुड़े थे। बूंद अलग हो जाए तो न सागर रहे, न बूंद बचे। सात समुंदर पार से आए अंग्रेजों को समाज के कर्तव्य-बोध का न तो विशाल सागर दिख पाया, न उसकी बूंदें। उन्होंने अपने यहाँ के अनुभव और प्रशिक्षण के आधार पर यहाँ के राज में दस्तावेज़ जरूर खोजने की कोशिश की, लेकिन वैसे रिकार्ड राज में रखे नहीं जाते थे। इसलिए उन्होंने मान लिया कि यहाँ की सारी व्यवस्था उन्हीं को करनी है। यहाँ तो कुछ है ही नहीं।'

-आर-8/15, राजनगर, गाज़ियाबाद (उ०प्र०)

# सोने के पिंजरे में भारतीय

## ● डॉ. अजित गुप्ता

(राजस्थान साहित्य अकादमी की अध्यक्ष एवं प्रसिद्ध लेखिका डॉ. अजित गुप्ता पिछले वर्ष विश्व हिन्दी सम्मेलन में भाग लेने के लिए न्यूयार्क गई थीं। वहाँ उन्हें सम्मानित भी किया गया था। अपने अमेरिका प्रवास के दौरान उन्होंने वहाँ के जन जीवन को एवं विशेष रूप से प्रवासी भारतीयों के जीवन को अत्यन्त गहराई से देखा एवं अपने अनुभवों को एक लेख माला के रूप में लिपिबद्ध किया। प्रस्तुत हैं उसी के कुछ अंश :-

हम मानते हैं कि देश का विकास दो प्रकार का होता है, एक सभ्यता का विकास और दूसरा संस्कृति का विकास। अमेरिकी भौतिक स्वरूप का विकास अर्थात् सभ्यता का विकास पूर्ण रूप में है और भारत इस मायने में विकासशील देश कहलाता है। अमेरिका पूँजीवादी देश है और उन्होंने अपनी अर्थव्यवस्था इतनी सुदृढ़ कर ली है कि वे सारी दुनिया को पैसा उधार देते हैं और ब्याज के बदले में सारी जीवनोपयोगी वस्तुएँ प्राप्त करते हैं। सारा बाजार एशिया की वस्तुओं से भरा हुआ है। 25 प्रतिशत एशियाई उनके भौतिक स्वरूप के विकास में भागीदार हैं। वहाँ का प्रत्येक व्यक्ति टैक्स देता है, जबकि हमारे यहां टैक्स देने वालों का प्रतिशत क्या है? एक सज्जन ने बताया कि यहाँ टैक्स की आमदनी ही इतनी है कि इन्हें समझ नहीं आता कि इस पैसे को कहाँ खर्च करें? परिणाम सारी दुनिया को खैरात बाँटना और फिर उनके प्रकृति प्रदत्त संसाधनों का उपयोग करना। अमेरिका के पास भी प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता है लेकिन वह इनका उपयोग नहीं करता। जब दुनिया के संसाधन समाप्त हो जाएँगे तब हम उनका उपयोग करेंगे, यह है उनकी मानसिकता। इसलिए ही खाड़ी के देशों से तेल की लड़ाई लड़ी जा रही है। उनकी सभ्यता के विकास के पीछे है उनकी अर्थ प्रधान सोच। दुनिया के सारे संसाधन, बौद्धिक प्रतिभा सब कुछ एकत्र करो और अमेरिका के लिए

प्रयोग करो। ऐसा कौन करने में समर्थ होता है, निःसंदेह ताकतवर इंसान। वे विज्ञान के इस सिद्धान्त को वरीयता देते हैं कि जो भी ताकतवर है वही जीवित रहेगा अतः उनकी जीवन पद्धति का मूल मंत्र ताकत एकत्र करना है। सारी प्रकृति को गुलाम बनाने की प्रवृत्ति। भोग-विलास के लिए एकत्रीकरण की प्रवृत्ति। त्याग और समर्पण के लिए कहीं स्थान नहीं।

टैक्स के रूप में देने का अर्थ भी क्लब जैसी मानसिकता के रूप में परिलक्षित होता है। देश का मैनेजमेंट सरकार के रूप में तुम देखते हो तो टैक्स लो और हमें सुविधाएँ दो। उसमें त्याग की भावना नहीं है; भारत में त्याग ही त्याग है। हम टैक्स के रूप में कुछ नहीं देना चाहते लेकिन दान के रूप में सब कुछ दे देते हैं। इसलिए हमारा सांस्कृतिक विकास पूर्ण है। हम केवल अपने लिए ही नहीं, प्राणी मात्र के लिए, चर-अचर जगत् के लिए चिंतन करते हैं। शायद हमारी यही सांस्कृतिक सोच कभी विश्व को बचाने में समर्थ बनेगी। आज नई पीढ़ी को यह दकियानूसी लगता है लेकिन कल यही सिद्धान्त सभी को आकर्षित करेगा।

पश्चिम और फैशन दोनों शब्द अपने आप में भारत में पूरक समझे जाते हैं। लेकिन अमेरिका में फैशन सड़कों पर दिखाई नहीं देता, हो सकता है फिल्मों तक ही सीमित हो। वहाँ की वेशभूषा हम से अलग है लेकिन उसे फैशन का नाम नहीं दिया जा सकता। फिर अमेरिका में इतने देशों के बाशिंदे रहते हैं कि सभी कुछ गडगड हो गया है। पैन्ट और टी-शर्ट एक कॉमन ड्रेस बन गयी है। उच्च स्तरीय अमेरिकी कुछ नफ़ासत से रहता है जबकि आम अमेरिकी या अन्य नागरिक बहुत ही साधारण वेशभूषा में, जिसे कतई फैशन का नाम नहीं दिया जा सकता। हम भारत के गाँव में भी निकलते हैं तब भी कपड़ों के प्रति सचेत रहते हैं लेकिन वहाँ कहीं भी जाना हो, जैसे बैठे हो, चले जाओ। एक दिन कुछ लोग सूटेड-बूटेड दिखायी दे गए, मालूम पड़ा कि कोई सेमिनार है। व्यक्तित्व को निखारना भी यहाँ की आदत नहीं। जैसी आवश्यकता है, वैसी वेशभूषा है। भारत में सोना चाँदी, हीरे, मोती, अमूमन महिलाओं के शरीर पर लदे हुए दिखायी दे जाएँगे। लेकिन वहाँ तो इनके दर्शन कभी कभार ही होते हैं। मैंने हाथों में सोने की चूड़ियाँ पहन रखी थीं। मुझे समझ नहीं आया कि इनमें भी क्या कोई बम छिपा सकता है? एयरपोर्ट पर कहा गया कि इन्हें भी उतारिए और ट्रे में रखकर एक्सरे कराइए। वहाँ चूड़ी क्या होती है, शायद कोई जानता ही नहीं। कभी शाम पड़े घूमने जाते, तब



लगता नहीं की भारत की तरह बन सँवरकर जाना चाहिए , क्योंकि वहाँ कोई देखने वाला ही नहीं।

जब व्यक्तित्व की बात आ ही गयी है तब एक बात बताना चाहती हूँ कि वहाँ जाकर लगा कि हम जैसे लोग अपना व्यक्तित्व खो देते हैं। क्या कभी आपने ज़िन्दगी में ऐसे दिन बिताए हैं, जब आपकी पहचान मिट जाए या खो जाए। आप अपने आपको खोजते रहें कि मैं कौन हूँ? अमेरिका में रहकर पूरे एक महीने से भी अधिक समय ऐसे ही अपने आपसे रिक्त होकर बिताया है। कुछ लोग कहते हैं कि अरे आप इन दिनों में माँ के रूप में रहीं, कुछ कहेंगे कि आप इन दिनों में दादी के रूप में रहीं, लेकिन सच क्या है? अमेरिका आने के बाद समझ आता है कि व्यक्ति केवल एक जीव है। चलता-फिरता, खाता-पीता, सोता-जागता। इसके शरीर का कोई शिकार नहीं करता लेकिन इसके मन का शिकार प्रतिपल होता है। लाखों भारतीय यहाँ बसे हैं। और कभी न कभी उनके माता-पिता यहाँ आकर रहते हैं, कुछ ज़्यादा दिन और कुछ महीने-दो महीने। कुछ ने यहाँ ही बसेरा बना लिया है और कुछ आते-जाते रहते हैं। गाँव में चाची होती थी, ताई होती थी, जो सारे गाँव पर हुक्म चलाती थी, फिर शहर में अपने मोहल्ले में हम सिमट गए और महानगरों में अपनी सोसायटी तक लेकिन यहाँ विदेश में आप केवल आप हैं, आपकी पहचान आपके घर में भी नहीं होती। आप अच्छे से अच्छा खा सकते हैं, घूम सकते हैं लेकिन अधिकार आपके पास कुछ नहीं होता। अपने अधिकारों के लिए हमने शिक्षा पायी थी, जैसे-जैसे हम शिक्षित हुए, हम अधिकार विहीन हो गए।

भारत में हमारा ध्यान व्यक्तित्व विकास की ओर रहता है, हम बाह्य और आन्तरिक व्यक्तित्व विकास के लिए सदैव प्रयासरत रहते हैं। बाहरी सौंदर्य के लिए अपनी वेशभूषा, सौंदर्य प्रसाधन के लिए हम चिंतित रहते हैं वहीं आन्तरिक विकास के लिए रोज़गार प्रधान शिक्षा के अतिरिक्त ज्ञान प्राप्त करने के लिए और अपनी सृजनात्मक क्षमता विकसित करने के लिए भी प्रयत्नरत रहते हैं। लेकिन अमेरिका में ऐसा नहीं है। यहाँ शारीरिक सुंदरता के लिए लोग चिंतित नहीं हैं। कुछ भी पहनों, कैसे भी घर से बाहर निकल जाओ, किसी को चिन्ता नहीं। कुछ उच्च वर्ग है जो सूटेड-बूटेड दिखायी देते हैं, बाकी देशी तो बस वार-त्यौहार ही सजते हैं। केवल कमाना और ऐश्वर्य

भोगना जहाँ की संस्कृति का मूल मंत्र हो वहाँ व्यक्तित्व विकास के लिए कोई प्राथमिक स्थान नहीं है। बस पाँच दिन काम करो और दो दिन आनन्द। इसलिए मेरा वहा जाना केवल आनन्द लेने तक ही सीमित होकर रह गया। मैंने अपने आप से पूछा कि बता तू कौन है? मन ने कहा कि एक लेखक, लेकिन वातावरण ने कहा कि मात्र एक नारी।

ऐसा नहीं है कि अमेरिका में भी लोग सृजन की ओर नहीं खिंचते। वे सारे हैरत-अंगेज़ कार्य करते रहते हैं। लेकिन उनमें भारतीय नहीं हैं। हमारा यहाँ पैसा कमाना ही जीवन का उद्देश्य है, इसी के लिए शिक्षा प्राप्त की जाती है और इसी के लिए व्यापार किया जाता है। इस कारण भारतीयों का ध्यान एक सूत्र तक ही सीमित होकर रह जाता है। अमेरिका में अर्थ संचय को प्रमुखता नहीं है। शिक्षा, मकान, गाड़ी सभी के लिए ऋण सुविधाएँ हैं और शत-प्रतिशत लोग इसी का उपयोग करते हैं। सामाजिक बंधन नहीं के बराबर है और विवाह आदि पर खर्च भी न के बराबर ही है। वृद्धावस्था में सरकार अच्छी खासी पेंशन देती है। अर्थात् **वृद्धावस्था परिवार के अधीन न होकर सरकार के अधीन है।** भारतीयों में सामाजिक बंधनों के कारण अर्थसंचय की मानसिकता है और यह हमारे खून में शामिल हो चुकी है। जो भारतीय वहाँ बसे हैं, वे अब सारे सामाजिक बंधनों से मुक्त हैं लेकिन फिर भी अर्थसंचय की मानसिकता समाप्त नहीं होती। यही कारण है कि वे केवल अर्थ की ही भाषा जानते हैं। वे किसी भी सृजन की ओर नहीं मुड़ पाते। हाँ जब से वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर आक्रमण हुआ है तब से भारतीयों के मन में भी असुरक्षा का भाव आया है और उन्हें अपने देश की चिन्ता होने लगी है क्योंकि वे जानते हैं कि हम अमेरिकी कभी नहीं कहला सकते एवं इसीलिए इस दुनिया में हमारे लिए भी कहीं ज़मीन का टुकड़ा सुरक्षित रहना चाहिए। जैसे-जैसे दुनिया में लादेन का भय फैल रहा है और भारत में भी धार्मिक आतंकवाद दहशत पैदा करता है, वैसे-वैसे विदेश में बसा भारतीय भी अपने देश को सुरक्षित देखने के लिए प्रयासरत हो रहा है। इसलिए अब कुछ मात्रा में भारतीयों का ध्यान अपने देश की सुरक्षा की ओर भी जाने लगा है। वे भारतीय सामाजिक संस्थाओं को पैसा देने लगे हैं। इतना भर ही भारतीय जीवन शैली में बदलाव आया है।

आम भारतीय सोचता है कि मैं अमेरिका में नहीं, स्वर्ग में रह रहा हूँ

और भारत में लोग नरक में रह रहे हैं। वाकई अमेरिका स्वर्ग है। हमारे पुराणों में स्वर्ग की सारी कल्पना वहाँ साकार है। सुरा और सुन्दरी का भरपूर प्रयोग, कोई प्रतिबन्ध नहीं। अप्सराओं को बच्चे पैदा करने की छूट नहीं क्योंकि उनका यौवन अक्षुण्ण रहना चाहिए। कभी भ्रमण के लिए निकली उर्वशी, पुरुवा से मिलती है और मनुष्य के सुख और दुःख, मिलन और विरह से परिचित होती है। एकरसता भंग होती है, सारे ही रसों के लिए उर्वशी पृथ्वी पर रह जाती है। ऐसा ही है अमेरिका का स्वर्ग। वहाँ भी नारियां बच्चे नहीं चाहती, पुरुष को आनन्द समाप्त होने का भय सताता रहता है। किसी जीवन्त प्राणी को खिलाने का मन करे तो कुत्ता पाल लो। शायद युधिष्ठिर इसीलिए कुत्ते को अपने साथ स्वर्ग ले गए थे। सब कुछ साफ-सुथरा, एक सी बनावट, प्रकृति के साथ जीवन। केवल मनुष्य और मनुष्य की सत्ता। कोई किसी को रोकता नहीं, टोकता नहीं। कोई पारिवारिक बंधन नहीं, कोई मानसिक बंधन नहीं। लेकिन वास्तविक स्वर्ग में भी उर्वशी जैसी अप्सराएँ कहाँ माँगी थीं? वे भी संतान के सुख को चखना चाहती थीं, वहाँ भी एक दिन संतान की इच्छा अंकुरित हो ही जाती है और फिर संतान होने के बाद उस अद्भुत सुख के आगे स्वर्ग के सारे सुख फीके लगने लगते हैं।

अमेरिका में बच्चों के लिए विशेष मापदण्ड हैं जैसे भारत में गाड़िये-लुहारों का जीवन गाड़ी से शुरू होता है और गाड़ी में ही समाप्त होता है वैसे ही अमेरिका में भी जीवन बिना गाड़ी के सम्भव नहीं है। बच्चे को गोद में बैठने की इजाजत नहीं है, उसके लिए 'कार-सीट' का प्रबन्ध किया गया है। कार-सीट में बच्चे को बेल्ट से बाँधकर, उसका मुँह पीछे की तरफ रखो। बच्चे को चोट नहीं आनी चाहिए। लेकिन बच्चे तो मचलते रहते हैं, गोद में बैठने को, या फिर खिड़की से झाँकने को। बच्चा कब बंधन की भाषा समझता है लेकिन उसे बंधन की भाषा तो समझनी ही पड़ेगी। यदि अमेरिका में रहना है या फिर अमेरिका में पैदा हुआ है एवं अमेरिकी नागरिक बन गया है तो बन्धन स्वीकार करना पड़ेगा।

वहाँ भारतीय बच्चे और अमेरिकी बच्चों में अन्तर दिखाई देता है। शायद यह अंतर हमारे जीन्स का ही होगा। वहाँ के बच्चे चुपचाप कार-सीट या स्ट्रोलर में बाँधकर, चूसनी के सहारे पड़े रहते हैं, लेकिन भारतीय बच्चे बंधन पसन्द नहीं करते। हमारे यहाँ माँ की गोद चाहिए, सोते समय माँ

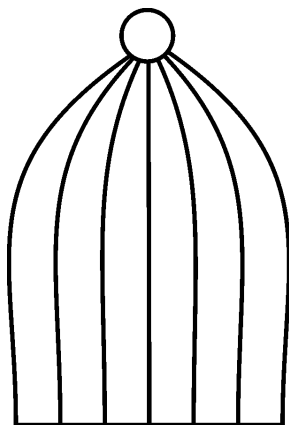
की गर्मी चाहिए, लेकिन वहाँ पृथकता का सिद्धान्त ही लागू है। न गोद में बिठाओ और न बिस्तर में साथ सुलाओ। ममता का विस्तार नहीं होना चाहिए। बच्चे को दुनिया में संघर्ष करना है, उसे मजबूत होना है, तो अकेले रहने दो। बच्चा भी सोलह साल का होते-होते पंछी की तरह नीड़ से उड़ जाता है। तुम्हारी दुनिया अलग और मेरी दुनिया अलग। कुछ भी साँझा नहीं, न सुख साँझे और न दुःख साँझे। जिन प्रश्नों को भारत में पूरा परिवार ही नहीं, पूरा समाज हल करता है, वे सारे प्रश्न वहाँ निजी हैं। माता-पिता साथ भी रहते हैं तो परायों की तरह, क्योंकि उनके भविष्य के बारे में पूछने का अधिकार उन्हें नहीं है। माता-पिता अपने भविष्य के बारे में तो खैर बात कर ही नहीं सकते। भगवान ने या प्रकृति ने ममता नामक एक भावना मनुष्यों में ऐसी भर दी है जिससे न तो वह निजात पा सकता है और न ही उसे धारण कर सकता है। इसलिए वहाँ का युवा ममता के इस अंकुर को अपने अंदर पनपने ही नहीं देना चाहते। वे जानते हैं कि हम कुछ दिन ही बच्चे के साथ रह सकेंगे और फिर जब हमारे हाथ सूजने लगेंगे, थर-थराने लगेंगे तब मन करेगा कि कोई मजबूत, जवान हाथ इन्हें आकर थाम ले। वे जानते हैं अपना भविष्य, इसलिए इस ममता को अंकुरित नहीं होने का प्रयास करते रहते हैं। फिर जिस देश की परम्परा में ही सहारा नहीं हो, वहाँ तो व्यक्ति परम्परा मानकर संतोष कर लेता है, लेकिन जिस देश में कूट-कूटकर एक ही भावना भरी गयी हो कि हम एक दूसरे का सहारा हैं, वहाँ का व्यक्ति क्या करे? कैसे अपने मन को समझाए कि नहीं अब यह परम्परा भारत के बच्चों ने यहाँ आकर समाप्त कर दी है अतः तुम भी इसे भूलने का प्रयास करो।

वहाँ जन्मे बच्चों का पालन-पोषण अमेरिकी बच्चों की तरह ही करना पड़ता है, क्योंकि अब वे अमेरिकी नागरिक बन गए हैं और उन्हें वैसे ही विकसित होना चाहिए। उनको वहीं के स्वाद का आस्वादन करना पड़ेगा। वहाँ बच्चों के लिए खिचड़ी, दलिया नहीं है। पैकड फूड उपलब्ध है। कुछ अमेरिकी, बच्चे नहीं चाहते और कुत्ते-बिल्लियों से ही काम चलाते हैं, जबकि कुछ अमेरिकी ढेर सारे बच्चे चाहते हैं। वे बच्चों को जन्म भी देते हैं और गोद भी लेते हैं। अमेरिका में सभी देशों के लोग रहते हैं अतः आपको कई घरों में कई देशों के बच्चे मिल जाएँगे, जिनको गोद लिया गया है। अमेरिका में ताकत की पूजा है अतः वे बच्चों को ताकतवर बनाना चाहते हैं। केवल उच्च शिक्षा में उनका विश्वास नहीं है। किताबी कीड़ा नहीं बनाना चाहते, वे जानते

हैं कि दुनिया में जीवित रहना है तो अपने दम पर रहना पड़ेगा, अतः ताकतवर बनो।

अंत में एक ही बात कहना चाहती हूँ कि भारत और अमेरिका की संस्कृति में रात-दिन का अन्तर है अतः अमेरिका देश अमेरिकन्स के लिए तो श्रेष्ठ स्थान है लेकिन भारतीयों के लिए संघर्ष करने का स्थान है। वहाँ प्रतिपल स्वयं से लड़ना पड़ता है। कभी जीभ के स्वाद को मारना पड़ता है, कभी पहनावे के साथ समझौता करना पड़ता है। सरकार को टैक्स दे-देकर कभी मन में अपने देश के उत्थान की बात को भी मन में ही दबाना पड़ता है। परिवार के प्रेम को मन में ही दफनाना पड़ता है। सबसे कठिन संघर्ष तो तब शुरू होता है, जब बच्चे 16 साल के हो जाते हैं। उनका नीड़ अलग बस जाता है, आप केवल अकेले होते हैं, केवल अकेले। तब तक भारत आने के रास्ते बन्द हो चुके होते हैं और वहाँ रहना एक मजबूरी बन जाती है। तब याद आती है, अपने देश की मिट्टी, अपनी बोली, अपने लोग। फिर हाथ में आ जाती है कलम, जो बिखेरने लगती है स्याही। फिर हम अपने देश पर लिखते हैं, भारतीय संस्कारों पर लिखते हैं और लिखते हैं अकेलेपन पर। भौतिक साधनों के आदी हुए हम, मन को मारते रहते हैं। भारत गरीब, पिछड़ा देश है, वहाँ कैसे सभ्य इंसान रह सकता है, यही सोच उन्हें वापस नहीं आने देती। इसलिए जब तक उनमें तड़प उत्पन्न न हो, तब तक भारतीयों को उस पारिवारिक ऋष्माविहीन शीतल देश में रहने दो।

-7, चरक मार्ग, उदयपुर ( राजस्थान )



## TAJ MAHAL

### IT IS TIME TO TELL THE TRUTH

○ Dr. V.S. Godbole

There are many legends about the Taj Mahal. But one sentence is common in all of them. "For the construction, 20,000 men worked for 22 years." This is well known throughout the world. The simple question is-where do these figures come from?

These figures come from the book 'Travels in India' by JB Tavernier, a French jewel merchant. He was a great adventurer who made six voyages to India in the days of Shivaji (1638 to 1668AD). Tavernier says, "I witnessed the commencement and completion of this monument (Taj Mahal) on which 20,000 men worked incessantly for 22 years."

Tavernier's book was first published in French in 1675. In those days, it was a great adventure for a single man to travel over such a long distance, face many difficulties, deal with peoples of many cultures and languages, adjust to their customs and traditions, and come home safely-that in itself was incredible. In addition Tavernier carried out a trade in precious stones like diamonds. He completed such voyages, not once but six times. His book was, therefore, a great sensation at that time. It was naturally translated into English and during 1677 to 1811 nine editions of the English translation were published whereas during the same period twenty-two editions of the French book were printed.

In 1889 Dr. Ball translated the original French book into English, corrected some mistakes in earlier translation and provided extensive footnotes. He also studied Tavernier's movements thoroughly and provided details of his six voyages. From this it is clear that Tavernier came to Agra only twice-in the winter of 1640-41 and in 1665. This raises another interesting question.

Historians say that Mumtaz, wife of Shahjahan died in 1631 and the construction of Taj Mahal started immediately. But if that is the case Tavernier could not have seen the commencement of Taj Mahal, as he came to Agra nearly 10 years later. Aurangzeb had imprisoned his father Shahjahan in the Red Fort of Agra since 1658 and usurped power. No Historian claims that Aurangzeb completed Taj Mahal. So, Tavernier could not have seen the completion of Taj Mahal either. And that being the case his statement that 20,000 men worked on it incessantly is meaningless. Why have Historians kept this truth from us for the last 117 years? The reason is simple. It strikes at the heart of the legend.

### **Badshahnama-what does it say?**

British Historians have proclaimed that in India, Hindu Kings had no historical sense. Historical records were kept only by the Muslim rulers. Fair enough, then let us turn to Badshahnama which was written during the reign of Shahjahan. Asiatic Society of Bengal published the Persian text of Badshahnama in two parts, part I in 1867 and part II in 1868. The compilation was done by two Maulavis, under the superintendence of an English Major. The funny thing is that no one quotes Badshahnama to explain how Taj Mahal was built. Why?

Elliot and Dowson, two English gentlemen undertook the formidable task of writing history of India from the attack on Sindh by Mohammed Bin Kasim in the 8th century to the fall of Marathas in the 19th century a period covering

some 1200 years. But it was written, based on chronicles of Muslim rulers only. Elliot and Dowson's work was published in 8 volumes during 1867 to 1877. Volume 7 deals with the reigns of Shahjahan and Aurangzeb. And yet in the entire volume we do not find the word Taj Mahal.' The authors should have said, "Though we have presented history of Shahjahan based on his official chronicle Badshahnama, we did not find any reference to Taj Mahal in it." They did no such thing. And historians have kept even this much information from us for the last 130 years.

In 1896 Khan Bahadur Syed Muhammad Latif wrote a book entitled 'Agra Historical and Descriptive'. He refers to Badshahnama many times but does not quote specific page numbers. On page 105 he says, "-The site selected for the mausoleum was originally a palace of Raja Mansingh but it was now the property of his grandson Raja Jaisingh." Many authors have referred to Latif in their bibliography but have not cared to see what he has said. This truth was also hidden away from us by our historians.

In 1905 H R Nevill, ICS, compiled Agra District Gazetteer. In it he words 'Raja Mansingh's Palace' to 'Raja Mansingh's piece of land'. Ever since all historians have followed suit and repeated 'Shahjahan purchased Raja Mansingh's piece of land, at that time in the possession of his grandson Raja Jaisingh.' This deception has been going on for more than a century.

Judging from above events it is obvious why Mr. Nevill played the mischief when compiling Agra District Gazetteer in 1905.

It is astonishing that though Maulavi Ahmad (History of Taj 1905) and Sir Jadunath Sarkar (Anecdotes of Aurangzeb, 1912) repeat that Raja Mansingh's piece of land was purchased by Shahjahan, they also provide a reference to Badshahnama, Volume I page 403. Strange as it may sound, no one had bothered to see what is written on that page.

What was Agra City like before Shahjahan came to power? That is the question dodged by all historians. In the 17th century, the Dutch like the English were trying to trade in India. They had a Factory (trading post) in Agra. Fransisco Pelsaert, was their Senior Factor (Merchant) at Agra from 1620 to 1627. In 1626 he prepared a commercial report for his directors in Holland. By strange coincidence, he describes Agra City at that time. He says, "The city is narrow and long, because all the rich and influential people have built their palaces on the river bank and this stretches for ten and a half miles. I will mention some of the well known ones. Starting from the North there is the palace of Bahadur Khan, Raja Bhoj, Then comes the Red Fort. (Pelsaert then describes the Fort) beyond it Nakhas-a great market, then follow the palaces of great Lords- Mirza Abdulla, Aga Naur Mahabat Khan, Late Raja Mansingh, Raja Madho Singh."

English translation of the report was available since 1925. And yet no historian refers to it. Why? The reason is simple. In 1626 Pelsaert had said that ten and a half mile stretch of the river-bank was full of palaces, Late Raja Mansingh's Palace being the last but one. Badshahnama says that Shahjahan took over this palace for burying his wife Mumtaz. Thus what we call Taj Mahal today is nothing but Late Raja Mansingh's Palace. That is the truth which historians have kept away from us. In 1982 Archaeological Survey of India published a booklet entitled-Taj Museum. Though the authors repeat the usual legend they say, "Mumtaz died in Burhanpur and was buried there. Six months later Shahjahan exhumed her body and sent her coffin to Agra, on that site until then stood Late Raja Mansingh's Palace"

Today that palace is called Taj mahal, nothing could be simpler. What building work is needed for burying a corpse in a Palace?

**- 14 Turnberry Walk Bedford U.K.**

April to June 08

GYAN PRABHA

## कली-स्फुटन पश्चात् विस्फोट

■ अंजु दुआ जैमिनी

इस देश में बेटी को कौन चाहता है? पर, न चाहते हुए भी बेटी जन्म ले ही लेती है। यदि पहली संतान पुत्री है तो झूठे मुँह से निकलता है 'चलो, लक्ष्मी आई है।' पर उसके जन्म पर कोई थाली नहीं बजाई जाती, कोई मिठाई नहीं बाँटी जाती और कोई विशेष खुशियाँ नहीं मनाई जाती। यदि कोई माँ अपनी प्रथम पुत्री के जन्म पर भव्य समारोह का आयोजन करती है तो समाज में कानाफूसियाँ होती हैं- 'हुंह! बड़ी आई! पागल है। भला बेटी के जन्म पर कोई इतना शानदार कार्यक्रम करता है? सिर्फ लेने के लिए ऐसा किया है।'

अब बताइए, भला कोई माँ अपनी खुशी भी नहीं बाँट सकती? संगीता ने जब प्रथम संतान के रूप में पुत्र जन्मा तो उसकी ममेरी सास बधाई देने आई और बोली- 'वाह! संगीता ने तो हीरा जन्मा है हीरा।' अब यह हीरा बड़े होकर कब कोयला बन जाए यह उसकी ममेरी सास नहीं जानती।

बेटी के जन्म के साथ ही माथे पर बल पड़ने शुरू हो जाते हैं। यदि बेटी भूख से बिलबिला रही हैं तो माँ ही कह उठती है- 'ठहर जा, मरने जोगी! जब देखो तब भूख से रोती है। थोड़ी देर दूध नहीं मिलेगा तो मर नहीं जाएगी।'

दादी यह सुन मुस्कुरा उठती है।

इसके ठीक विपरीत, यदि यही वचन लड़के के लिए माँ ने कहे होते तो दादी की जोरदार डाँट माँ को पड़ती। भेद भाव तो यहीं से शुरू हो जाता है। लड़की की जान कीमती नहीं इसलिए यदि लड़की बीमार है तो थोड़ा इंतजार किया जाता है, तुरन्त डॉक्टर के पास नहीं भागा जाता।

नन्हीं पुत्री के साथ पिता लाड लड़ाए तो तुरन्त माँ टोकती है- 'इसे इतना सिर न चढ़ाओ, कलको पराए घर जाना है।' तुरन्त पिता अपने लाड पर बाँध बना लेता है।

प्रथम संतान लड़की को यदि नकारा नहीं जाता तो स्वीकारा भी नहीं जाता। उसके जन्म के साथ ही अगली संतान के रूप में पुत्र-प्राप्ति की इच्छा बलवती हो जाती है। लड़की के सिर पर कोई निशान है? नहीं है तो ढूँढा जाता है क्योंकि यह खास निशान भाई लाने का संकेत है। निशान मिलने पर प्रसन्नता जाहिर की जाती है 'देख लेना! किस्मत वाली है। भाई लेकर आएगी' इसके बाद पंडितों के चक्कर लगाए जाते हैं, मनोतियाँ मानी जाती हैं। 'अबकी बार मेरे घर पुत्र जन्मा तो फलां-फलां जागरण या चढ़ावा या यात्रा करूँगी।' यह इच्छा संतान की चाह नहीं बल्कि पुत्र की इच्छा है। पुत्र-प्राप्ति की चाह की पराकाष्ठा इस बात से देखी जा सकती है कि दो-तीन वर्ष की बालिका से माँ के गर्भवती होने पर पर्चियाँ उठवाई जाती हैं। दो पर्चियाँ बनाई जाती हैं-पुत्र और पुत्री। यदि नहीं बालिका के हाथ में पुत्र वाली पर्ची आ गई तो उसे गोद में उठाकर उसका मुँह चूम लिया जाता है। और इसके विपरीत यदि 'पुत्री' वाली पर्ची आ गई तो कहा जाता है-'चल पागल! दुबारा उठा पर्ची।'

इस खेल से 'पुत्र-इच्छा' का लालच स्पष्ट उभरकर जाता है। जो लोग ऐसा करते हैं यदि वे एक बार निःसंतान दम्पतियों की छटपटाहट देख लें तो शायद शर्म से पानी-पानी हो जाएँ। उन दम्पतियों से पूछकर देखिए जो पिछले कई वर्षों से संतान का मुख देखने को तरस रहे हैं। अनगिनत चिकित्सीय परीक्षणों के नरक से गुजरते हुए, समाज की टेढ़ी निगाहों का सामना करते हुए, दूसरों के बच्चों को हसरत-भरी दृष्टि से देखते हुए सोचते हैं कि कब उनकी सूनी गोद में संतान खेलेगी। उस समय संतान का लड़का या लड़की होना कोई मायने नहीं रखता।

अब यह विचारणीय है कि पुत्री-जन्म के साथ ही उसके साथ माँ-बाप या परिवार के अन्य सदस्यों का व्यवहार कैसा रहता है। माँ को हर पल उसकी सुरक्षा की चिंता सताती है क्योंकि दुधमुँही बच्चियों के साथ बलात्कार की बढ़ती घटनाएँ चिंतित करने के लिए काफ़ी हैं।

निम्नवर्गीय या निम्न मध्यवर्गीय परिवारों में नन्हीं बच्चियों के साथ बलात्कार की बढ़ती घटनाएँ समाज के माथे पर कलंक हैं। (बचा तो कोई भी वर्ग नहीं)। झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वाले या गंदे माहौल में पलने वाले किशोर या व्यक्ति हर समय कामवासना के विषय में सोचते हैं क्योंकि उनके सामने शिक्षा-प्राप्ति का मकसद नहीं और न ही किसी अन्यकार्य में उनकी

रुचि है। उनका मनोरंजन टी.वी., सिनेमा या किसी भी तरह की यौनतुष्टि है। ये किशोर यौन कुंठित होकर अवसर ढूँढते हैं। माँ ज़रा-सा इधर-उधर हुई, ये बच्ची को ले भागते हैं। फिर खेतों में या सुनसान में अपनी हवस पूरी करते हैं। उस बच्ची की हालत का अनुमान लगाया जा सकता है कि उस पर वहशियत का क्या अंजाम हुआ होगा। कैसे सहन किया होगा उसने इस राक्षसी-कृत्य को? बच्ची रक्त से लथपथ दम तोड़ देती है या मार दी जाती है।

इससे क्या फ़र्क पड़ता है कि बाद में हत्यारा या दुष्कर्मी पकड़ा जाता है। कौन सी उसे फांसी की सजा मिल जाती है। सबूतों के अभाव में कई बार अभियुक्त छुट्टे घूमते हैं और अन्य बच्चियों पर इस तरह के अत्याचार दोहराते हैं।

इस तरह की घटनाएँ माँ को चिंतित कर देती हैं और यहीं से शुरू हो जाता है लड़की को घर के भीतर बंद रखने का सिलसिला। पौष्टिक आहार के नाम पर लड़कियों का ज्यादा ध्यान नहीं रखा जाता। उनके लिए ज्यादा खास पदार्थ मुहैया नहीं कराए जाते। ग्रामीण अंचलों में मक्खन, घी, छाछ आदि पर लड़कियों का हक नहीं समझा जाता और आश्चर्य की बात है कि लड़की थोड़ी बड़ी हुई कि उसे घरेलू कामकाज में झोंक दिया जाता है गोया लड़की-जात काम करने के लिए ही पैदा हुई हो। यदि वह कमैरी है तो क्या उसे पौष्टिक आहार नहीं दिया जाना चाहिए?

बीमारी की अवस्था में भी लड़की के इलाज पर रुपया खर्च करना समाज को धन की बरबादी लगता है।

इसके अतिरिक्त बच्चियों के साथ दुष्कर्म करने वाले कई बार अपने भी होते हैं। क्या मासूम का चीत्कार उन्हें उद्वेलित नहीं करता? आज के समय में कितना संवेदनहीन हो गया है इंसान। इक्कीसवीं सदी में पहुँचकर भी वह सभ्य नहीं बन पाया।

इस देश में दुष्कर्मी को काफ़ी समय बाद और काफ़ी कम दंड दिया जाता है। बेबी-किलर एक व्यक्ति नहीं बल्कि कुंठित समाज का अगुआ है। कहीं न कहीं व्यक्ति में हैवानियत छिपी है। सज़ा में देरी और कमी इन अपराधियों को अपराध करने की शह देती है।



## नारी उत्थान के उद्घोषक डॉ. भीम राव अम्बेडकर

● डा. चम्पा श्रीवास्तव

विश्व इतिहास के शिखर पुरुष, दलितों तथा शोषितों के मसीहा, नारी सम्मान की वेदी पर अपना सर्वस्व न्योछावर करने वाले, महान् देश भक्त तथा उत्कृष्ट संविधान निर्माता थे-भारत रत्न डॉ. भीम राव अम्बेडकर जिन्होंने सम्पूर्ण सृष्टि की जननी नारी जिसके रग-रग में धरती जैसा धैर्य, आकाश की ऊँचाई, सागर की गहराई तथा नदी की मंगलकामनायें विद्यमान हैं, और उसकी समग्र प्रगति को ही समाज की प्रगति का आधार माना।

भारतीय समाज में महिलाओं की दयनीय स्थिति को देखकर वे क्षुब्ध रहते थे। उत्तर वैदिक काल, रामायण काल तथा महाभारत काल में स्त्रियों को घर से निकाल देना तथा जुए में दाँव पर लगा देना कोई कठिन बात नहीं थी। समय और समाज के साथ ही नारी की दयनीय स्थिति के उत्तरदायी हिन्दू धर्मग्रन्थ तथा उनमें निहित नियम भी हैं।

नारी समाज के उत्थान का कार्य सबसे पहले डॉ. अम्बेडकर ने दलित, शोषित तथा अछूत समाज से ही प्रारम्भ किया। 18 एवं 19 जुलाई 1942 को दलित वर्गों का एक अखिल भारतीय सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें 20 हजार महिलाओं ने भाग लिया तथा दूसरे दिन दलित वर्ग महिला सम्मेलन हुआ, जिसमें लगभग 25 हजार महिलाओं ने सहभागिता की। इस सम्मेलन में बाबा साहब ने कहा था-वे किसी वर्ग की उन्नति का अनुमान इस बात से लगा लेते हैं कि उस वर्ग की महिलाओं ने कितनी उन्नति की है? बच्चों में पढ़ने-लिखने और अच्छे नागरिक बनने की भावनायें पैदा करो। माँ-बाप का यह कर्तव्य है कि वे बच्चों का जीवन उज्वल बनायें। औरतों को पराधीन रहने से इन्कार करना चाहिये। डा. अम्बेडकर ने यह उद्बोधन ही नहीं दिया

अब बात करते हैं बच्चियों को गोद लेने के बारे में। यहाँ भी भेदभाव है। लड़के को गोद लेने के इच्छुक आवेदकों की लंबी लाईन होती है जबकि लड़की आसानी से गोद मिल जाती है। इसके अतिरिक्त अवैध संतान के रूप में नवजात लड़कियाँ कपड़े में लिपटी अधिक पाई जाती हैं। अस्पतालों में बच्चा चोरी होने की या बच्चा बदलने की घटनाओं में नवजात लड़के ही शिकार बनते हैं। यह लड़के की चाह के पागलपन का नमूना है, एकदम जीवंत उदाहरण। ऐसी असंख्य माताएँ हैं जो पुत्र प्राप्ति के लिए पड़ोसन के बच्चे की बलि तक देने को तैयार हो जाती हैं।

तात्पर्य यह है कि लड़की न पाने के लिए स्त्रियाँ प्रयास करती हैं। इसके पीछे अप्रत्यक्ष वजह है कि पति पुत्र-प्राप्ति हेतु दूसरी शादी की धमकी देता है या हर वक्त तानेबाजी करता है। अभी हाल ही में एक पिता ने अपनी दूसरी बेटी को कुएँ में धकेलकर मार डाला। कारण वही कि वह लड़की जो थी।

आज बेटी माँ बाप के लिए अभिशाप बनी हुई है। उसके पीछे तुच्छ सोच है। हमारे समाज को लड़की को आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा देनी होगी ताकि कोई माँ लड़की के जन्म पर आँसू न बहाए।

कली को फूल बनने दो

कि फूल बगिया को महकाएगा।

-839ए सैक्टर-21सी, फ़रीदाबाद-121001 (हरियाणा)



अपितु इस सम्मेलन में दो प्रस्ताव भी पारित कराये। प्रथम यह कि “एक से अधिक विवाह पर पाबन्दी लगाई जाये और द्वितीय यह कि “स्त्री श्रमिकों को वेतन के साथ-साथ प्रसूति छुट्टी तथा सुविधायें प्रदान की जायें।” हर्ष की बात है कि 28 जुलाई 1928 को जब बाबा साहब बम्बई लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य थे, उस समय स्त्रियों के लिये एक प्रसूति सुविधा बिल पेश किया गया। इस बिल में महिलाओं की प्रसूति घटना को एक सामान्य दुर्घटना की भाँति मानकर उसे वर्कमैन कम्पन्सेशन एक्ट के प्रावधानों की तरह प्रस्तुत करके उसी प्रकार कम्पन्सेशन की व्यवस्था की गई थी। इस बिल के गहन अध्ययन के द्वारा व्यावहारिकता का परिचय देते हुये डॉ. अम्बेडकर ने अपना समर्थन प्रस्तुत करते हुये कहा था:-

“स्त्रियों की प्रसूति घटना साधारण घटनाओं से भिन्न प्रकार की घटना है। उस समय उन्हें प्रसूति के पूर्व और प्रसूति के बाद में भी कुछ समय तक आराम की तथा विशेष सुविधाओं की आवश्यकता होती है। उन्हें आराम पहुँचाना राष्ट्र हित में है। मैं स्वीकार करने के लिये विवश हूँ कि प्रसूति का पूरा व्यय सरकार को वहन करना चाहिये क्योंकि लोगों की रक्षा और उनके कल्याण का दायित्व प्रथमतः सरकार का है। उन्होंने प्रसूति की इन सुविधाओं के व्यय भार के लिये मिल मालिकों को भी उत्तरदायी ठहराते हुये बिल का समर्थन किया था। परिणामतः स्त्रियों को प्रसूति सुविधायें प्राप्त हुई।

नारी कल्याण के लिये बाबा साहब को उसे पुरुष के समान अधिकार दिलाना था। यह कार्य उन्होंने संविधान की धारा 14 एवं 15 में अपेक्षित प्रावधान करके पूर्ण किया। 14वीं धारा में अंकित है कि-“भारतीय राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समानता से अथवा विधियों के समान संरक्षण से राज्य द्वारा वंचित नहीं किया जायेगा।” 15वीं धारा के अनुसार राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म मूल, वंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान अथवा इनमें से किसी एक के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।”

इन दोनों धाराओं से स्पष्ट ज्ञात होता है कि मूलरूप में नारी पुरुष के समान है। उनमें बिल्कुल भेद भाव नहीं है। इस समानता को लेकर उस समय तक एक अहम् प्रश्न उठा था कि जब दोनों धाराओं से नारी समाज को पुरुष के समान ही समान अधिकार प्राप्त हो गये तो ‘हिन्दू कोड बिल’ की क्या आवश्यकता थी? वास्तव में इस कोड बिल का उद्देश्य दोनों धाराओं के सूत्रों का भाष्य करना तथा हिन्दूधर्म शास्त्रों की नारी विरोधी मान्यताओं, रीतियों

और नियमों को प्रभाव हीन बनाकर नये प्रगतिशील समानता के नियमों को बनाना था।

इसमें 9 भाग, 139 धारयें तथा 7 अनुसूचियाँ थीं। इस बिल का मुख्य उद्देश्य था-“हिन्दू परम्परा पर आधारित सामाजिक विषमता, भेदभाव और क्रूरता पूर्ण मान्यताओं, रीतियों और नियमों को नष्ट करना था। बिल में विवाह विच्छेद, तलाक, दत्तक लेने में भागीदारी तथा सम्पत्ति में बेटे के बराबर बेटि की भी हिस्सेदारी और उत्तराधिकारी नियुक्त करने का अधिकार प्रदान किया गया था। डा. अम्बेडकर ने हिन्दू कोड बिल में दो प्रकार के विवाहों का प्रावधान किया-शास्त्रीय विवाह तथा सिविल विवाह। शास्त्रीय विवाह में पहले बहुपत्नीत्व की अनुमति थी। हिन्दू कोड बिल में एक पत्नीत्व की अनुमति प्रदान की गई। शास्त्रीय विवाह-विच्छेद नहीं हो सकता था। उसमें तलाक की व्यवस्था नहीं थी किन्तु हिन्दू कोड बिल में विवाह विच्छेद का प्रावधान कर दिया गया। नये कोड के अन्तर्गत विवाह करने पर वर-वधू को विवाह विच्छेद करने का अधिकार भी मिल गया। इसी प्रकार दत्तक, सम्पत्ति तथा उत्तराधिकार आदि को नव्य आयाम प्रदान किया गया जिसे महत्वपूर्ण उपलब्धि कहा जा सकता है। उल्लेखनीय है कि सरदार वल्लभ भाई पटेल तथा डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने बिल का घोर विरोध किया था। लोगों की कथनी और करनी में इस प्रकार का भेद देखकर डॉ. अम्बेडकर बहुत दुखी हुये। उस समय उन्होंने कहा था-“हिन्दू कोड बिल की चार धारयें पास करने के बाद उनकी हत्या कर दी गई और दो आँसू बहाये बगैर ही इसे दफन कर दिया गया। इतना ही नहीं 28 दिसम्बर 1951 को उन्होंने कानून मंत्री पद से त्याग पत्र देकर अपना विरोध व्यक्त किया। इस बिल की विशेष उपलब्धि यह रही थी कि नारी समाज में अपने विषय में सोचने और समझने की भावना पैदा हुई और उसमें राजनैतिक चेतना का संचरण हुआ। इस युग में नारी समाज की गुलामी की बेड़ियाँ काटकर उसे स्वतन्त्र कराने का श्रेय डॉ. अम्बेडकर को ही है।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने नारी के ‘अर्धांगिनी’ शब्द की व्याख्या अपनी पत्नी रमा बाई (रामू) के त्याग, तपस्या, स्नेह, समर्पण तथा स्वाभिमान की व्यक्तित्व से की प्रस्तुत। एक बार बाबा साहब कॉलेज में पढ़ाने के लिये जाते समय रमाबाई को खर्च के लिये पैसा देना भूल गये। रात को जब वापस लौटे तो देखा कि कमरे में दिया नहीं जल रहा है। कमरे में अँधेरा देखकर बाबा साहब ने पूछा-“रामू! आज दिया क्यों नहीं जलाया?” “जाते समय आप पैसा



देना भूल गये थे।” रमा बाई ने धीरे से कहा। बाबा साहब ने पुनः कहा-“पड़ोस में किसी से मिट्टी का तेल और दिया सलाई की तीली माँगकर कमरे में कम से कम दिया तो जला देती।” उस समय रमा बाई ने उत्तर दिया था-“किसी से माँगकर मैं गुजारा करना अच्छा नहीं मानती। अगर ऐसा होता तो आप भी सरकारी नौकरी करके हम सब को सुखी बना सकते थे। मैं पड़ोसी से माँगकर जीने के बजाय भूखी रहना ज़्यादा पसंद करती हूँ। मेरा भी स्वाभिमान पूर्ण जीवन है।”

स्वाभिमानी जीवन जीने का यही पाठ बाबा साहब ने नारी समाज को पढ़ाया। अपने कठिन परिश्रम तथा नारी विकास के दृढ़ संकल्प ने ही भीम राव अम्बेडकर को महापुरुष बना दिया था। बाबा साहब ने अपनी पुस्तक ‘थाट्स ऑन पाकिस्तान’ को अपनी सहधर्मिणी रमा बाई को समर्पित किया है। वे प्यार से रमा बाई को ‘रामू’ कहते थे। इस समर्पण में उन्होंने लिखा है-“मैं यह पुस्तक रामू को उसके मन की सात्विकता सद्भावना, सदाचार, मानसिक पवित्रता और अभाव व परेशानियों के दिनों में मेरे साथ दुःख झेलने, उस समय जब कि हमारा कोई सहायक नहीं था, अतीव सहनशीलता तथा सहमति दिखाने के लिये प्रशंसा स्वरूप समर्पित करता हूँ।” यही समर्पण बाबा साहब की अमरता का कारण बना। उनका प्रत्येक संघर्ष अपने राष्ट्र के लिये था, सोये हुये को जगाने के लिये था।

डॉ. वी. पट्टाभिसीता मैय्या का विचार था कि-“डॉ. अम्बेडकर इस देश के उच्च स्तर के देश भक्तों में से एक हैं। मैंने इन्हें हमेशा रचनात्मक योगदान देते पाया है। पं. जवाहर लाल नेहरू तथा डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने इनकी ‘भारतीय संविधान के मुख्य शिल्पी’ के रूप में भूरि-भूरि प्रशंसा की है। बाबा साहब ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं हिन्दू पैदा अवश्य हुआ हूँ लेकिन हिन्दू रहकर मैं मरूँगा नहीं। वे भविष्यद्रष्टा थे तभी तो मरने के सात सप्ताह पूर्व धर्मान्तरण करके उन्होंने बौद्ध धर्म ग्रहण किया था। उन्होंने जातिवादी, दकियानूसी हिन्दुओं को चुनौती देते हुये 6 दिसम्बर 1956 को इस भावना के साथ महा प्रयाण किया कि बार-बार मेरा जन्म शोषित, पीड़ित, दुःखी और भयभीत लोगों को शोषण, पीड़ा, दुःख और भय से मुक्त कराने के लिये तथा नारी उत्थान के लिये होता रहे।

-बी-64, आनन्द नगर, रायबरेली

## प्रिय और अप्रिय का मनोविज्ञान

● राकेश शास्त्री राजा

यह मानवी स्वभाव है कि जो वस्तुएँ उसके ईद-गिर्द होती हैं, उनमें से कुछ अच्छी लगती हैं कुछ बुरी प्रतीत होती हैं, जबकि कईयों की ओर ध्यान भी नहीं जाता। जो अच्छी लगती हैं, उनसे प्यार करते हैं, जो बुरी लगती हैं, उनसे घृणा करते हैं, जो उपेक्षित हैं, उनकी ओर आँख उठा कर भी नहीं देखते। हम चाहते हैं कि प्रिय वस्तुएँ सदा अधिकाधिक परिमाण में पास रहें। उनकी समीपता सुखदायक होती है। सुखदायक वस्तुएँ सभी को सुहाती हैं।

यहाँ तनिक उस मनोविज्ञान की चर्चा कर लेना अनुचित न होगा, जिसके कारण वस्तुएँ प्रिय अप्रिय लगती हैं। कंगले को अपना कुरूप पुत्र भी राजकुमारों की भांति प्रिय होता है, जबकि धनी पड़ोसी का रूपवान पुत्र भी सामान्य जैसा प्रतीत होता है। अपने लाडले को तनिक जुकाम हो जाए, तो ऐसी भागदौड़ मचने लगती है, जैसे कोई सांघातिक छूत लग गई हो, पर पड़ोस का सुन्दर सलोना बच्चा बुखार में तप रहा हो, तो कोई चिन्ता नहीं। क्लर्क अपनी टूटी साईकिल से संतुष्ट और प्रसन्न रहता है, उसका कोई छोटा तार टूट जाये तो चिन्तित व उदास हो जाता है, जबकि अपने अधिकारी की मंहगी रोयल्स रायस कार क्षतिग्रस्त हो जाय, तो कोई परवाह नहीं। किसान को अपनी लहलहाती फ़सल देखकर जितना आनन्द होता है, शायद उतना हर्ष उसे गाँव के ज़मींदार को अन्न से भरे कोठार को देखकर नहीं होता। ज़मींदार के गोदाम को आग लग जाये, फिर भी वह चैन की नींद सोता रहता है, किन्तु उसके अन्न से भरे खेत पशु चर जायें, तो नींद गायब हो जाती है।

इससे ऐसा लगता है कि सदा गुणवान और रूपवान वस्तुएँ ही मन को भाती हैं-सो बात नहीं है। यदि बात ऐसी रही होती, तो कंगले, किसान व

क्लर्क को भी दूसरों की हानि पर उतना ही दुःख होता जितना अपनी चीज़ के बिगड़ने या बरबाद होने पर, किन्तु व्यवहार में ऐसा होता कहाँ देखा जाता है? तो क्या यह मान लिया जाये कि सदा सुन्दर वस्तुओं से घोर वितृष्णा ही उपजती है? नहीं, उक्त मान्यता भी ठीक नहीं। यह अधूरी व्याख्या है। सच तो यह है कि जिस चीज़ में जितनी मात्रा में अपनापन एवं आत्मभाव होता है, वह उसी परिमाण में प्रिय लगती है, चाहे यह गुण रहित क्यों न हो। इसी मनोविज्ञान के कारण अपनी बुरी-से-बुरी वस्तु भी चित्ताकर्षक लगती है, जबकि दूसरों का अच्छा और आकर्षक सामान भी कोई विशेष आनन्द उत्पन्न नहीं कर पाता। अपनी बात में कोई दम न हो, तो भी कहने का अन्दाज़ ऐसा होता है, जैसे स्वयं अफ़लातून से कोई कम न हों, पर दूसरे की तर्क संगत सारगर्भित बात भी निस्सार और नीरस प्रतीत होती है। अपना व्यक्तित्व कीड़ों जितना तुच्छ क्यों न हो, फिर भी गर्व से सीना ऐसे फूला रहता है, मानों महामानवों, महापुरुषों की तो उनके सामने कोई औकात ही नहीं। वे बौने जैसे लगते हैं और खुद का बौनापन हिमालय जैसा विराट और विस्तृत ऊँचाई वाला जान पड़ता है।

आयेदिन समाचार-पत्रों में यह खबरें छपती ही रहती हैं कि अमुक प्रेमी अथवा प्रेमिका ने प्रेम-विवाह न हो पाने के कारण आत्महत्या कर ली। यहाँ आत्मघात का कारण यह नहीं कि एक से विवाह न हो पाया, तो शादी की संभावना सदा-सदा के लिए समाप्त हो गई हो, अथवा संसार में लड़के-लड़कियों का अभाव पड़ गया हो। सच्चाई तो यह है कि प्रेमी-प्रेमिका का एक-दूसरे के प्रति अपनापन इतना घनीभूत हो जाता है कि सारी दुनिया उस घनिष्ठ संबंध के आगे उबाऊ जान पड़ती है।

मकान और दुकान अच्छे अपने ही लगते हैं। उनकी साज-सज्जा और बनावट की प्रशंसा करते नहीं थकते। टूट-फूट, मरम्मत का खूब ध्यान रखते हैं। संयोगवश वह बिक कर दूसरों के हाथ में चले जायें, तो एक प्रकार से निश्चिंतता आ जाती है। फिर वह हज़ारों वर्ष खड़े रहें या कल ही गिर पड़े, इससे कोई मतलब नहीं। कल तक जो इतने प्रिय थे, जिनके टूटने-फूटने से दारुण दुःख पहुँचता था, वह एक झटके में ही समाप्त हो गया। इसका कारण क्या है? विरक्ति इतनी जल्दी कैसे पैदा हो गई? उत्तर होगा हस्तांतरण से उत्पन्न हुई अनासक्ति के कारण। कल तक जो उसकी संपदा थी, जिनके साथ

उसका आत्मभाव चिपका था, वह आज नहीं रहा। कल तक जिन रुपयों से भरी थैली को अत्यंत उत्साह से छाती से चिपटाए फिरते थे, वह आज दूसरे व्यापारी के पास चली गई। यदि वे रुपये अब चोरी चले जायें तो उसके पहले के मालिक को कोई कष्ट नहीं होगा। उन रुपयों के बदले जो माल खरीदा है, अब वह प्यारा लगने लगा है। कल वह माल भी पड़ोस में पड़ा था, पर तब उसकी ओर आँख उठाकर भी न देखते थे। आज उसकी सुरक्षा के लिए एड़ी-चोटी का पसीना तक बहा रहे हैं। माल वही कल था, वही आज है। अंतर केवल इतना हुआ कि कल वह पराया था, आज अपना हो गया! अपनापन ही तो अच्छा लगने का कारण है।

आये दिन मौतें होती व चिताएँ जलती रहती हैं, उनके अग्नि संस्कार में भी हिस्सा कहाँ ले पाते हैं? मरघट के बगल से निकलते हुए उन सब संस्कारों पर एक उपेक्षापूर्ण दृष्टि डाल कर पुनःअपने में खो जाते हैं। न उसका पता पूछने की फुरसत! न संवेदना जताने की औपचारिकता। सब कुछ सामान्य सा प्रतीत होता है, पर जब अपना कोई प्रियजन मरता है, तब फूट-फूट कर रोते हैं, आंसुओं की झड़ी लगा देते हैं, दुनिया सूनी दिखती है, भूख प्यास उड़ जाती है, दुःख शोक की व्याकुलता में और चारों ओर अंधेरा छा जाता है। पड़ोसी का भाई न रहा, तब चेहरे पर ज़रा सी शिकन न आयी थी, पर आज इतनी व्याकुलता क्यों? मरते तो सभी एक समान है, किन्तु एक की मृत्यु का ज़रा भी शोक नहीं, दूसरे के लिए इतनी वेदना क्यों? यथार्थता यह है कि जिस व्यक्ति में आत्मभाव सम्मिलित कर रखा था, वह प्रिय था, प्रिय के विछोह में ही तो दुःख होता है। अपने घर पुत्र पैदा हुआ तो खुशी से पाँव धरती पर नहीं पड़ते, पड़ोसी के यहाँ बच्चा जन्मे, तो कुछ प्रयोजन नहीं। यह स्वाभाविक है।

यहाँ उद्देश्य मात्र यह बताने का है कि **गुण-अवगुण के कारण ही हम वस्तुओं को प्यार नहीं करते, वरन् प्रमुख कारण उसमें आत्मभाव का, अपने स्वार्थ का होता है। जिससे जितना स्वार्थ-संबंध है, वह उतना ही अधिक प्रिय लगेगा।** प्रिय से ही प्रसन्नता मिलती है। शोकजन्य अप्रियता तो तब पैदा होती है, जब उनके लुटने, मिटने जैसी स्थितियाँ प्रस्तुत हों।

यथार्थता तो यह है कि विश्व की एक भी वस्तु न तो प्रिय है, न ही अप्रिय। किसी कारणवश आकर्षित होकर जब अपना आत्मभाव उसमें सम्मिलित

हो जाता है, तो वह मनभावन लगती है। जिससे स्वार्थ का विरोध पड़ता है, वह बुरी लगती है, और जिससे प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष कोई संबंध नहीं, उसके प्रति उपेक्षा रहती है। भले-बुरे के पीछे का यही मनोविज्ञान है कि जो जितने अंशों में, जिस भाव में इस विज्ञान को धारण किये होता है, उतने ही अनुपात में सुःख दुःख का अनुभव करता है

दुःख निवारण और सुखोपार्जन के यहाँ दो ही उपाय हैं। एक तो स्वयं को निरपेक्ष और निःस्पृह स्तर का बना लिया जाये कि आसक्ति के कारण उत्पन्न दुःख का अन्त हो जाये। दूसरा अपने “स्व” को इतना विस्तृत और व्यापक बना लिया जाये कि सब कुछ अपना प्रतीत होने लगे। प्रथम स्थिति को प्राप्त करना तो परमहंस स्तर के योगियों द्वारा ही संभव है, पर दूसरी स्थिति ऐसी नहीं, जिसे सर्वसाधारण प्राप्त नहीं कर सके। वस्तुतः ये दोनों ही जीवन की दो चरमावस्थाएँ हैं। एक व्यक्ति को विरक्ति की ओर ले जाती है, तो दूसरे आसक्ति की ओर। पर यह आसक्ति व्यामोह से आविर्भूत सांसारिक लगाव जैसी नहीं होती। यह विशुद्ध आध्यात्मिक स्थिति है, जिसमें अपनेपन का भाव तो होता है पर वह लगाव नहीं होता। आँसू जब बहुत अधिक दुःख हो तब भी निकलते हैं और आनन्दातिरेक में भी। वैसे ही शोक मुक्त हो पाना इन दोनों स्थितियों में भी संभव है, पर सर्वसामान्य के लिए अपने आपे को विस्तृत कर आनन्द की स्थिति प्राप्त कर पाना ज्यादा सरल और सहज है। ऋषियों ने इसी अवस्था को उपलब्ध करने के लिए “आत्मवत् सर्वभूतेषु” और “वसुधैव कुटुंबकम्” के सूत्र दिये हैं। जो जिस अनुपात में यह भाव-विकसित कर लेता है, उसके लिए यह संसार उतने ही अंशों में प्रिय लगने लगता है।

स्वर्ग की बड़ी महिमा गाई गई है। पुराणों की कथाओं में उसका विस्तृत वर्णन मिलता है। उस सब का सार यह है कि वहाँ सब प्रिय वस्तुएँ मौजूद हैं। ऐसा स्वर्ग धरती पर स्वयं भी उतारा और बसाया जा सकता है, इसी जीवन में इन्हीं आँखों से उसे देखा एवं अनुभव किया जा सकता है। इसके लिए अभीष्ट आवश्यकता एक ही है-अपने आत्म विस्तार के साथ ही पराये अपने लगने लगेंगे, दूसरे की खराब वस्तुएँ भी अच्छी लगने लगेंगी। प्रेम का अजस्र उत्स फूट पड़ेगा, जिसमें बिराना कोई न होगा। जो होंगे, सब अपने, प्रिय और प्रेमपात्र होंगे। प्रेमास्पदों का समुच्चय ही तो स्वर्ग है।

## 16 QUALITIES THAT GENIUSES HAVE IN COMMON

The worlds greatest geniuses had some personality characteristics in common and you can develop the same traits yourself An expert says :-

"If you look at the lives of the worlds greatest geniuses like Socrates, Einstein, Mahatma Gandhi etc. you will discover they all had 16 personality characteristics in common".

"These are traits that anyone can develop. It makes no difference how old you are, how much education you have, or what you have accomplished to date. Adopting these personality characteristics enables you to operate on a genius level".

1. **Drive** : Geniuses have a strong desire to work hard and long.
2. **Courage** : It takes courage to do things others consider impossible.
3. **Devotion to goals** : Geniuses know what they want and go after it.
4. **Honesty** : Geniuses are frank, forthright and honest.
5. **Optimism** : Geniuses never doubt they will succeed.
6. **Enthusiasm** : Geniuses are so excited about what they are doing that it encourages others to cooperate with them.
7. **Willingness to take chances** : They overcome fear of

## पाठक नामा

आदरणीय संपादक महोदय,

जनवरी-मार्च 08 अंक प्राप्त हुआ। मुखपृष्ठ सादापन समेटे रंग बिखेर जाता है। इस अंक में लगभग सभी लेख प्रभावशाली हैं। भारत विकास परिषद् क्या है लेख द्वारा परिषद् उद्देश्य स्पष्ट हुए हैं। राष्ट्रदेवो भव, ग्रामीण बैंक, माइक्रोक्रेडिट आदि लेख सूचनापरक है। इस अंक में डॉ. अब्दुल कलाम जी का लेख होना सुखद लगा। उनका लेख शिक्षकों के लिए मार्गदर्शन का काम करेगा। गरीबों की सवारी रिक्शा, चेतना के द्वारपाल प्रश्न, मन की खुराक हँसी आदि लेख मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक दृष्टि पर खरे उतरते हैं, जीवन का उद्देश्य एवं मार्ग स्पष्ट करते हैं।

- अंजु दुआ जैमिनी, फ़रीदाबाद

Dear Editor,

The magazine is really helpful for improving the knowledge and you deserve praise for publishing such a beautiful magazine.

- **Santanu Naik, Silchar (Assam)**

Dear Sir,

I happened to see the bilingual quarterly magazine Gyan Prabha. It stands apart from other magazines available in the market. Most of the magazines are full of gossip about film stars or political controversies. It is very hard to find so many serious, well-researched second language of the elites and you are doing a great service to this section by giving articles in both the languages in one magazine. The magazine may not prove to be very popular among masses but it is serving a great purpose.

Please keep up the effort.

-**S.C. Goel**

**Mayur Vihar Phase-I Delhi**

failure. They won't be afraid to take chances

8. **Enterprise** : Geniuses are opportunity seekers. They are willing to take on jobs others won't touch.
9. **Persuasion** : Geniuses know how to motivate people to help them get ahead. They find it easy to be persuasive because they believe in what they are doing.
10. **Ability to communicate** : Geniuses are generally able to get their ideas across to others. They take every opportunity to explain ideas to others.
11. **Patience** : They are patient with others most of the time, but always impatient with themselves.
12. **Perfectionism** : Geniuses cannot tolerate mediocrity, particularly in themselves. They always strive to do better.
13. **Sense of humor** : They are willing to laugh at their own expense.
14. **Adaptability** : Being flexible enables them to adapt to changing circumstances readily. They resist doing things the same old way. They are willing to consider new options.
15. **Individualism** : They do things the way they think these should be done, without fearing somebody's disapproval.
16. **Idealism** : They keep their feet on the ground but have their heads in the clouds. They strive to achieve great things, not just for themselves but for the betterment of mankind.

- **Compiled**

**SUBSCRIPTION FORM**

**GYAN PRABHA**  
(Quarterly)

**ज्ञान  
प्रभा**  
(त्रैमासिक)

I would like to subscribe for GYAN PRABHA.

*(Please Tick Appropriate Box)*

Subscription	One Year	2 years	Life Membership
	Rs. 100/- <input type="checkbox"/>	Rs. 200/- <input type="checkbox"/>	Rs. 1500/- <input type="checkbox"/>

*(Please Write in Block Letters)*

NAME : MR./MS. \_\_\_\_\_

ADDRESS : \_\_\_\_\_

CITY \_\_\_\_\_ STATE \_\_\_\_\_ PIN

TEL. : \_\_\_\_\_

DATE : \_\_\_\_\_ SIGNATURE \_\_\_\_\_

My Cheque/Draft No. \_\_\_\_\_ dated \_\_\_\_\_

for Rs. \_\_\_\_\_ drawn on \_\_\_\_\_

\_\_\_\_\_ (specify bank) favouring

**Bharat Vikas Parishad, Delhi** is enclosed herewith.

*Please send this coupon along with your payment to*

**Bharat Vikas Parishad**

Bharat Vikas Bhawan, Behind Power House, Pitampura, Delhi-110088

Tel. : 011-27313051, 011-27316049 Fax : 011-27314515